ॐ

जैनशासन का गौरव

# महासती चन्दन बाला एवं महासती अंजना

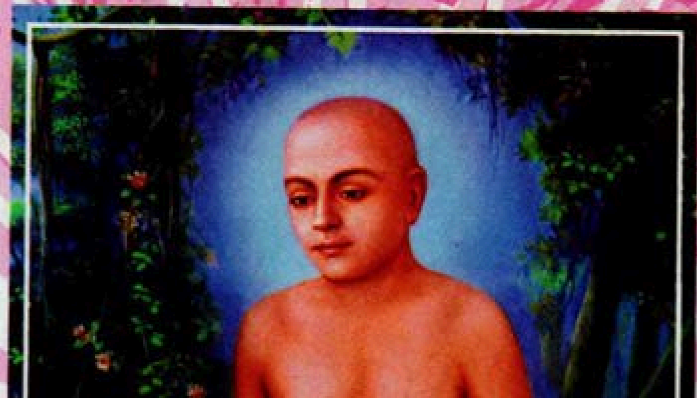

जिनशासन सेवी गुरु वर, अनुपम उपकार तुम्हारा।
चेतन की प्राण प्रतिष्ठा, कर घर-घर किया उजियारा।।

**अहो ! स्वभाव की महिमा इतनी अपूर्व है कि तीन लोक की प्रतिकूलताएँ एक साथ भी उदय में आ जायें तो भी उसका सामना करने की सामर्थ्य आत्मा में है।**

गुरू की गुरूता प्रभु की प्रभुता, आत्माश्रय से ही प्रगटे।
भव-भव के दुखःदायी बंधन, स्वाश्रय से क्षण में विघटे।।
आत्मध्यान ही उत्तम औषधि, भव का रोग मिटाने को।
आत्मध्यान ही एक मात्र, साधन है शिवसुख पाने को।।

---

ध्रुव का अबलम्बन जिनके, विचलित नहीं होते जग में।
उपसर्ग परीषह आवें, पर सतत बढ़े शिवमग में।।
है आत्मज्ञान की महिमा, हो अद्भुत समताधारी।
उनकी गरिमा वर्णन में, इंद्रो की बुद्धि हारी।।

ॐ

।। परमात्मने नमः।।

जैनशासन की गौरव

आत्मसाधिका

# महासती चन्दनबाला

एवं

# महासती अंजना

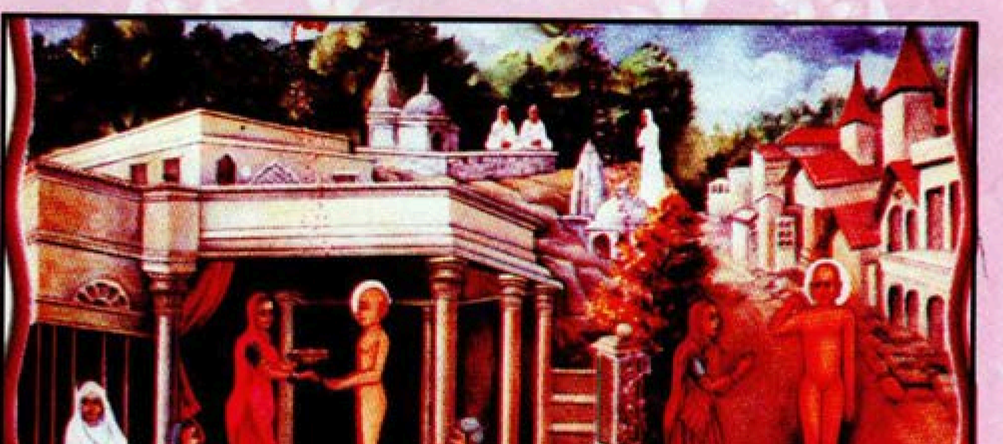

प्रकाशक

**सूरज बेन अमुलखभाई शेठ स्मृति ट्रस्ट**

मुम्बई

प्रथम संस्करण– 7000
द्वितीय संस्करण– 7000 दस लक्षण महापर्व 2015 के पावन अवसर पर

प्राप्ति स्थान

सूरज बेन अमुलखभाई शेठ स्मृति ट्रस्ट
302, कृष्ण कुंज, प्लॉट नं. 30 , वी.एल. महेता मार्ग
विलेपार्ले (वेस्ट), फोन: 26130820 मुम्बई- **400056**

❀

आचार्य कुन्दकुन्द फाउंडेशन,
85, चैतन्य विहार, आर्य समाज की गली
रामपुरा कोटा (राज.) मो.: 09712532059

❀

के. एफ जनरल स्टोर्स
जगदलपुर (छत्तीसगढ़)

© सर्वाधिकार सुरक्षित

न्यौछावर राशि **₹25**

प्रकाशन सहयोगी

**श्रीमती वर्षा-सुनील जैन, मौसम जैन, सीमांत जैन**
**श्रीमती मीना-पूरनचंद जैन, निधि जैन, प्रतीक जैन**
जगदलपुर

प्रकाशन पुरस्कर्ता

अंबिका-अभिनव जैन, डॉ. रचित जैन, युग, मायरा, रीतेश-नम्रता दुग्गड़, पूजा-जय, हरशैल-रिद्धिमा, रणवीर, वाशी
अर्हा, शीनल-विवेक जैन, अनिता-शिखर जैन, मुम्बई, संवर, अन्वया, अर्पित-ओशिमा जैन (यू.एस.)
परिधि, सन्निधि, आदि, अन्वया, आर्या, शुभ, रीत, भव्य, दृशि, सोनल-अंशुल जैन, जबलपुर
तन्मय, ध्याता, सुनीता-प्रेमचंद जी बजाज, कोटा, अरिहंत जैन फरीदाबाद, सहज-परिणति बिलासपुर
सेजल, कुशाग्र, रूशील, सोनम, आहान, आनन्दी लालजी - कान्तादेवी सरावगी, गोहाटी
भावना-रौनक, कृतिका, विशाखा, आगरा, विशुद्धि-आत्म-अर्हम-प्रसिद्धि, बकसवाहा

# प्रकाशकीय निवेदन

## प्रस्तुत है जैन पौराणिक कथा

## महासती चन्दनबाला एवं महासती अंजना।।

आत्म आराधकों की कथा, हरती है हमारी भव व्यथा ।
पढ़कर सुनकर होती है प्रसन्नता, मिटती है खेद खिन्नता।।

महापुरूषों का आख्यान, वीतरागी भगवंतो का है व्याख्यान।
जिन परम्परा से प्राप्त श्रुत का हार्द, वीतरागी रंजन खोलेगा परमार्थ ।।

स्वाध्याय की परम्परा में डाल दी जान, आया था संत हृदय सत्पुरूष कहान।
अणु-अणु की स्वतंत्रता का किया उद्घोष, तत्व ज्ञान ही देगा संतोष।।

विराधक परिणामों की भयंकरता पर डाला प्रकाश, वंदन हर क्षण हर श्वास।
जन जन जगजीवों में जागे तत्व ज्ञान, सभी जीव समझें करलें कल्याण।।

कथा से कहने की प्रथा है अनमोल, आचार्यों के वचन हैं क्या करें हम तोल?
पद्मपुराण, उत्तरपुराण, वचनामृत सार, सूत्र इनसे उदघृत किये हैं साकार।।

धन्य चन्दना-अंजना सती तुम हो महान, साधना के साधने में तुम रहीं चट्टान।
सहजता की मूरत थी आडम्बर शून्य, शब्द पड़े ओछे और बौने अपूर्ण ।।

संस्कार वासना के विषयों के पड़े गहरे, गहरी आराधना बिन, ये भूत नहीं उतरते।
गंगा सी ज्ञान धारा, बहती रहे धरा पर, भटके न भव्य प्राणी, शुद्धात्म के शिखर से।।

प्रस्तुत ग्रंथ के संकलन में समस्त दिगम्बर जैन शासन के ग्रंथों का सहयोग हमें मिला है उनके प्रति हम कृतज्ञ हैं ।

प्रस्तुत ग्रंथ का लेखन एवं संकलन ब्र. चिदानंद जी, पं. राजेन्द्र कुमार जी, संस्कारधानी स्वर्णपुरी जबलपुर ने किया है।

अनेक विद्वानों, आत्मार्थी भाई-बहिनों का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोग हमें मिला है उन सभी के प्रति भी हम बहुत आभारी हैं।

प्रमाद या अज्ञानतावश रह गई त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित कर विज्ञ जन हमारा उपकार अवश्य करेगें। सम्पूर्ण विश्व में जिनवाणी का प्रचार प्रसार हो जिन शासन निरन्तर अबाधगति से चलता रहे ।

ऐसी मंगलभावना के साथ

प्रकाशक परिवार

दीपा शेठ, पारूल शेठ

# अपनी बात...

सती शील शिरोमणि हुयीं, चंदना अर अंजना।
धन्य हुई यह भरत भूमि, धन्य जिनकी साधना।।
सुमेरू सा श्रद्धान दृढ़, आनंद झरना सा झरे।
शांति मय जीवन जिया, जिनधर्म जिन हृदय बसे।।
बंधनों के बीच में भी, अबंध का अनुभव किया।
सम्यक्त्व से जीवन सुशोभित, आपने अपना किया।।
धर्म माता ही गिना, उपसर्ग कर्ता सिठानी को।
शत्रुता स्वाहा करूं थी, भावना उस ज्ञानी को।।
दोष सासु ने लगाकर, घर से जब बाहर किया।
फिर भी अशरण हूँ नहिं, परमेष्ठी प्रभु शरणा लिया
उपसर्ग के पहाड़ टूटे, किया स्वागत सभी का।
दोष देना ही नहीं, आता था समता मूर्ति को।।
वीतरागी जैन शासन, रोम -रोम हृदय बसा।
मुक्ति ही पाना जिन्हें था, लक्ष्य जिनवर भक्त का।।
सत्य पथ ही लक्ष्य जिनका, उसे कौन हरायेगा।
मोह क्षोभ होगा ही कैसे, जिन शासन जिसे भा जायेगा।।
आओ आवाहन करें इन, ज्ञानियों के गुणों को।
पढ़े और पढ़ायें ये जीवन, चरित्र जिन भविक को।।
सभी ज्ञानी जनों का, उपकार हम पर है अपार।
भक्ति बस रचना हुयी, गंभीर शासन हृदय धार।।

अत्यंत प्रेरणादायक वैराग्य वर्धक सन्मार्ग दर्शी इस कथानक को बार-बार पढ़े तो भी तृप्ति नहीं होगी। सभी लाभ लें, जीवन धन्य बनायें।

इस कृति में आपको जो कुछ भी अच्छा लगे तो वह वीतराग मार्ग अनुसारी ज्ञानी जनों का समझना। जो भी कमी लगे वह हमारी समझना।

ऐसी मंगलभावना के साथ.....

जिनवाणी सेवक
ब्र. चिदानंद जैन, पं. राजेन्द्र कुमार जैन

ॐ

जैनशासन का गौरव

आत्मसाधिका

# महासती चन्दनबाला

## {1}

## मंगलाचरण

अर्हन्त सिद्ध सूर उपाध्याय साधु सर्व,
वीतराग भगवंत आप ही हमारे हैं।।
मोह को मिटाने वाले, राग को गलाने वाले,
ज्ञान को जगाने वाले, आप ही सहारे हैं।।
सती चन्दना की वंदना भी, हो गई वो धन्य।
विरद तिहारी सुन, आये तेरे द्वारे हैं।।
धन्य-धन्य जैन धर्म वीतरागी जयवंत।
रोम रोम में हमारे आप ही समाये हैं।।

जिन पवित्र पुराण पुरूषों के नाम से जिन श्रावकों का सूर्योदय होता है , जिनके उत्तमशील का स्मरण अंतर में निर्मलता प्रगटाता है। ऐसी महान सतियों के सुंदर चरित्र पुष्पों की श्रृंखला में एक उत्तम पुष्प की महक हम प्रस्तुत कर रहे हैं ।आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व अंतिमशासन नायक भगवान महावीर स्वामी के शासनकाल में धर्मरत्न शील शिरोमणि, आत्मआराधिका, सत्यसाधिका, उपसर्गजयी सती चंदनबाला ने अपना जीवन तो धन्य किया साथ ही भरत भूमि को भी धन्य किया। श्री वीर प्रभु से साक्षात् दिव्य देशना का जिन्हें सुमधुर योग प्राप्त हुआ था। आत्मानुभूति से सुशोभित चन्दना जगतबंध्य हुयीं। उनकी गौरवगाथा हम सभी गाकर जीवन धन्य करें।

शील शिरोमणि सती चन्दना, जिनशासन में हुई महान।
आओ सुनायें गौरव गाथा-गाता जो इतिहास पुराण।।
राजा चेटक मात सुभद्रा की बेटी थी सुंदर सात।
सबसे छोटी चंदन बाला बेटी थी आगम विख्यात।।
छोटी सी थी उम्र तभी से, तत्वज्ञान ही मन भावे।
प्रश्न एक ही मन लहराता, कब आतम अनुभव आवे।।
विषयवासना नहीं सुहाती, बस आराधन भाता था।
प्रश्न पूछने प्रभु दर आती, वर्धमान से नाता था।।

वीर कुमार से मिलने उनके साथ वैराग्यमयी चर्चा करने हेतु चंदनबाला का मन लालायित रहता था। एक दिन वे कुण्डग्राम पहुँची और अपनी बड़ी बहिन त्रिशला देवी के पास बैठकर वीरकुमार का गुणगान कर रही थी, इतने में प्रिय कुमार भी वहाँ आ पहुँचे, विनयशील जिज्ञासु विरक्त चित्त चंदनबाला को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और वैरागी वीर कुंवर को देखकर चंदना का हृदय भी उनके प्रति नतमस्तक हो गया। आपस में योग्य विनय सहित मधुर वाणी में स्व-पर की कुशल क्षेम पूछकर कर्णों में मानो अमृत वृष्टि ही की हो।

चंदना - हे लोकोत्तम, करूणा के धनी! कृपया हमें यह बतायें कि संसार की असारता हमें कैसे भासे और आत्म स्वभाव का रस हमारे जीवन में कैसे बढ़े ?

वीरकुमार - हे भव्य आत्मन! आत्मा में सुख बुद्धि होते ही आत्मा की अनंत महिमा भासने लगती है। जिस प्रकार थका हुआ पक्षी अपने वृक्ष पर आकर विश्राम करता है उसी प्रकार संसार, शरीर, भोगों से थका हुआ प्राणी अपने आत्म स्वरूप में समा जाता है। बस इसी को व्यवहार में यह कहा जाता है कि उसे संसार असार भासित हुआ है। असार का सीधा सा अर्थ है कि संसार से मेरे प्रयोजन की सिद्धि नहीं।

चंदना - हे कुमार! हम धन्य हो गये! आपके पास आकर आपकी मुद्रा, वचन चेष्टा, सब वीतरागता से ओतप्रोत है, आपको देखकर संसार तो वास्तव में असार दिखने लगा है। हे कुमार ! हमारी भी आपके जैसी आराधना कैसे प्रारंभ हो! विकल्प तो बहुत सताते हैं।

वीरकुमार- हे धर्म पिपासु! धन्य हैं आप, जो संसार की असारता संबंधी विचार आपके हृदय में आया। संसार से सुख पाने की आशा तो उड़ते पक्षी की छाया जैसा है। सर्वप्रथम विकल्पों की निस्सारता का निर्णय होना चाहिए, हम सोचते कितना है और होता कितना है। विकल्प भी स्वाधीन है और परिणमन भी स्वाधीन है। विकल्पों की पूर्ति में हर्ष मानना, विकल्पों की पूर्ति की रूचि में उलझे रहना, आकुल व्याकुल होना इसी का नाम तो संसार है, विकल्पों के अनुसार वस्तु का परिणमन होता नहीं और भूमिका अनुसार विकल्प हुए बिना रहते नहीं।

इस प्रकार विकल्प तो आते जाते रहते हैं लेकिन विकल्पों के काल में विकल्प

को जानने वाला ज्ञान भी तो है न ? जिसकी सत्ता में विकल्पों का ज्ञान हुआ अर्थात विकल्प जान लिए गये वही ज्ञान तो आत्मा है। अज्ञानता में जिन विकल्पों की मुख्यता भासित होती थी वे विकल्प शुद्धात्मा के अकर्ता स्वरूप का निर्णय होने पर, अपनी पूर्णता व प्रभुता समझ में आने पर क्षीण हो जाते हैं। उपयोग बार-बार बाहर से खिसक कर अपनी ओर आवे, लौकिक वार्ताओं का रस न बने इस प्रकार ज्ञायक की मुख्यता में विकल्प ओझल होते-होते कब समाप्त हो जाते हैं सो पता ही नहीं चलता। ज्ञायक की मुख्यता होती जाती है और स्वभाव की प्राप्ति की अपूर्वता आनंद सहित बढ़ती जाती है इस प्रकार चैतन्य चमत्कार में गहरे उतरते ही भाव भासन हो जाता है।

इस प्रकार उन्होंने वीर कुमार से चैतन्य की अपार गंभीर महिमा सुनी। उनकी आत्मा चंदन जैसी महक से महक उठी और उन्हें निर्विकल्प आनंद की अनुभूति हुई उन्होंने आत्मीय पुरूषार्थ पूर्वक सदा के लिए स्त्री पर्याय का छेदन कर दिया और अपना जीवन सफल कर लिया। चंदन बाला ने मन ही मन विवाह न करने का निर्णय कर लिया था, धन्य है चंदना, धन्य है उनके शील का सौरभ।

चंदनबाला धन्य हो गई, धन्य हुआ महावीर मिलन ।
ज्ञान चेतना झंकृत हो गई, आज चली अब मुक्ति सदन।।
कैसी सुंदर दिव्य देशना वर्धमान के द्वार बही।
महामोह गढ़ ध्वंस हो गया, विजय पताका फहराई।।
आज हुआ शुद्धातम अनुभव, आज हुआ जीवन पावन।
मुक्ति श्री निश्चित पाऊँगी, घर आया समकित सावन।।
इस संसार महावन भीतर, भव-भव में गोते खाये।
धन्य-धन्य महावीर आपने, कष्ट अनंतो विनशाये।।

## {2}

जगतमाता प्रियकारिणी माँ त्रिशला ने अपनी तीक्ष्णप्रज्ञा से अपनी लाड़ली बहिन की अंतर परिणति को परख लिया।

चंदनबाला अति प्रसन्न मन में दिखलायी।
माँ त्रिशला ने तत्वज्ञान चर्चा दुहरायी।।

बहिन मुक्ति का मारग है ये कितना प्यारा।
जहाँ वर्ते स्वाधीन शांति, समता की धारा।।
हे भवि जीवों तुम्हें कहीं गर न रूचता हो।
पुण्य उदय तो हो लेकिन संतोष नहीं हो।।
तो अपना उपयोग पलट अपने में आओ।
ज्ञायक प्रभु भाये निश्चित विश्वास जगाओ।।
हाँ बहना जब-जब स्वभाव की बात गुंजाती।
त्यों ही यह उपयोग करंट ज्यों तार समाती।।
चंदनबाला बोली मुनिजन महिमा आती।
मुक्ति प्राप्त हो शीघ्र भावना बढ़ती जाती।।
त्रिशला बोली विषय विषैले नाग दिखाते।
एकमात्र शुद्धात्म सार मुनिवृंद बताते।।
शांत चित्त हो परमामृत रस पान करूंगी।
धीर वीर हो मोह भाव तज ध्यान धरूंगी।।
हाँ बहिना चैतन्य भाव ही सदा सहाई।
वर्धमान ने प्राण प्रतिष्ठा विधि समझाई।।

जब दोनों धर्मात्मा बहनें इस प्रकार स्वानुभूति की चर्चा तथा महावीर का यशोगाान कर रही थी। तब महावीर कुमार तो उद्यान में बैठे आत्मध्यान में महाआनंद का साक्षात् वेदन कर रहे थे। दोनों बहनें दूर से वह दृश्य देखकर आश्चर्य मुग्ध हो गई। धन्य है महावीर, मानो भावी सिद्ध ही बैठे हैं।

चंदना - आत्माराम के अनुभव से जो रस प्रगट हुआ है, उसको वीर कुंवर ध्यान अग्नि में गाढ़ा कर रहे है। अरे! वास्तव में तो लौकिक संगति पुरूषार्थ एवं परिणाम को बिगाड़ने का कारण है जबकि ज्ञानियों की संगति से परिणाम संभलते है व पुरूषार्थ उछलता है।

## {3}

वीरकुंवर के स्वभाव के ताने बाने जन्म से ही वीतरागता के शांत रस से निर्मित थे, अल्पायु में ही लोकरंजन से बहुत दूर वे अपने एकांत ध्यान में अपने चेतनदेव को आमंत्रित किया करते थे।

गया। परभावों से थककर स्वसन्मुख हुआ। उनका उपयोग अब आनंदमय निज घर में ही संपूर्ण रूप से स्थिर होना चाहता है, आज उनके वैराग्य की धारा कोई अप्रतिम है, आज वह सर्वत्र विभाव रूप परदेश से लौटकर स्वभाव रूप स्वदेश में स्थिर होना चाहते हैं। आज उनको जातिस्मरण ज्ञान हुआ। स्वर्गलोक के दिव्य दृश्य देखे, चक्रवर्ती का वैभव देखा, सिंह देखा, सम्यकत्व का बोध देते हुए मुनिवर देखे, उसके पूर्व की नरकगति भी देखी। इस प्रकार अपने पूर्वभव देखकर वीर प्रभु का चित्त संसार से विरक्त होकर जिनदीक्षा लेने हेतु उद्यत हुआ।

अपने से, अपने में, अपने लिए आनंदित होते हुए नेत्र खुले तो उनकी मुद्रा भी कोई अलौकिक ही थी। माता ने पूछा - बेटा वर्धमान, आज इतने विचारमग्न क्यों हो ?

वीरकुंवर- हे माता! आज मैने अपने पूर्व भव देखे है। अब मेरा चित्त क्षणभर भी संसार में नहीं लग रहा है। मैं तो मुनिदीक्षा अंगीकार करूंगा और शुद्धोपयोग द्वारा निज परमात्मा को साधूँगा।

माँ - बेटा ! जंगल में अकेले कैसे रहोगे ?

वर्धमान - माँ,! बाहर से देखो तो मुनिराज आत्मसाधना हेतु वन में अकेले दिखते हैं; परन्तु अंतर में देखें तो अनंत गुण से भरपूर स्वरूप नगर में निवास करते हैं। बाहर से देखने पर भले ही परिषह सहन करने वाले दिखते हों परन्तु अंतर में देखने पर वे आत्मा के मधुर रस का आस्वादन कर रहे हैं।

हे माता! मेरे आनंद स्वरूप को अंगीकार करने को मैं जंगल में जाता हूँ। एक बार क्षमा करके आज्ञा देने की कृपा करें। मैं वचन देता हूँ कि मैं फिर दूसरी माता को नहीं रूलाऊँगा।

**भोग भुजंग समान देखकर, काँप गया तन-मन सारा।**
**कदली तरू संसार लेखकर, सिमट गयी जीवन धारा।।**

अहो! प्रभु का दीक्षा कल्याणक जानकर लौकान्तिक देव वैशाली में आ पहुँचे। वैराग्य भावना में निमग्न प्रभु ने दृष्टि उठाकर लौकान्तिक देवों की ओर देखा। उस समता रस झरती दृष्टि को देखकर देवगण अत्यंत प्रमुदित हुए। एक ओर वैरागी तीर्थंकर तो दूसरी ओर वैरागी लौकांतिक देव। अहा! वैराग्यवान उत्तम साधकों का अद्भुत मिलन। उस मिलन में दोनों के वैराग्य की पुष्टि हो रही थी।

लौकांतिक देव प्रभु के वैराग्य की अनुमोदना करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहेथे मानो अपने ही भावी मोक्ष की अनुमोदना कर रहे हों।

देवेन्द्रों ने प्रभु का दीक्षा कल्याणक मनाने हेतु प्रथम उनका देवीय श्वेत वस्त्रों से श्रृंगार किया। प्रभु का वह वस्त्र धारण करना अब अंतिम था।

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के संध्याकाल में स्वयं दीक्षित होकर, मुनिराज महावीर तप धारण करके चैतन्य धाम में लीन हो गये।

अरे! ध्यानस्थ प्रभु की शांत मुद्रा देखकर वन के सिंह, हाथी, हिरण आदि भी मुग्ध होकर शांति से प्रभु चरणों में बैठ गये। अहा, जिनकी मुद्रा देखने से आत्मस्वरूप के दर्शन हों ऐसी मुनिदशा का क्या कहना? मानो साक्षात् भावी मोक्ष तत्व ही विराजमान हैं।

शुद्ध तत्व पर आवरण कैसा? चार दिवारी और वस्त्रों का आवरण तो विषय विकार के पापों को होता है, धर्म पर आवरण कैसा? वह तो सर्व बंधनों को तोड़कर निर्ग्रंथ होकर अपने मूल स्वरूप में विचरता है और सर्वत्र वीतरागता से सुशोभित होता है। धन्य है दिगम्बर मुनिदशा।

सचमुच तीर्थंकर जैसे जीव भी जिन्हें बाह्य में किसी प्रकार की कमी नहीं थी, जो चाहे वह उन्हें मिलता था, जन्म से ही और जन्म से पूर्व भी इन्द्र जिनकी सेवा में तत्पर रहते थे, ऐसी उत्कृष्ट पुण्य के धनी सब बाह्य ऋद्धि को छोड़कर, उपसर्ग परिषहो की परवाह किये बिना, आत्मा का ध्यान करने के लिए वन में चले गये, तो उन्हें निश्चित ही आत्मा सबसे महिमावंत विशेष आश्चर्यकारी लगा होगा और बाह्य का सब कुछ तुच्छ भासित हुआ होगा।

आत्मा की निर्विकल्प आनंद साधना में झूलते-झूलते मुनि महावीर की आत्म साधना अनवरत चल रही है।

एक बार मुनिराज महावीर ने ऐसा उग्र अभिग्रह धारण किया कि - दासी के वेश में सिर मुंडाये हुए कोई सती राजकुमारी आहार देगी तभी आहार लूँगा, साथ में अन्य अनेक अभिग्रह थे। बिना आहार के महीनों बीत चुके थे। ऐसी स्थिति में विचरते हुए तीर्थंकर मुनि कौशांबी नगरी में पधारे। सारे नगर में एक ही चर्चा रहती थी कि-

वीर मुनिराज प्रतिदिन नगर में आहार हेतु पधारते हैं किंतु आहार नहीं हो

पाता, उन्होंने ऐसा कौन सा अभिग्रह धारण किया होगा, कौन होगा वह सौभाग्यशाली ? जिसे मुनिराज वीरनाथ के आहारदान का महान सौभाग्य प्राप्त होगा। अहा वह साधर्मी बड़ा भाग्यवान होगा जिसके हाथ प्रभु का पारणा होगा।

## {4}

एक बार चंदना अपनी सहेलियों के साथ महल के उपवन में क्रीड़ा कर रही थी। हर रोज की तरह आज भी राजभवन के उपवन में सभी सखियाँ झूला झूलने में मस्त थीं। यह तो सभी का रोज का कौतुक था, सूर्य का तेज मंद होने लगा था, राज्य में किसी प्रकार का भय नहीं था, चंदना भी झूला झूलने में मस्त थी कि तभी अचानक पीछे से किसी बलिष्ठ हाथों ने उसे जकड़ा और ऊपर उठा ले गया। उसने मुँह इस प्रकार जकड़ रखा था कि चीख भीतर ही घुटकर रह गई।

महल में तो इतनी ही सूचना आई थी कि राजकुमारी उपवन में अभी-अभी तो थीं परन्तु अब वो कहीं दिखाई नहीं दे रही हैं। फिर कितने प्रयास किये कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढा राजकुमारी को, परन्तु कहीं कोई चिह्न तक नहीं मिला।

मित्र और सहयोगी राजाओं ने भी भरसक प्रयत्न किये परन्तु चंदना का कोई निशान तक नहीं मिला। सारी तलाश व्यर्थ रही, सभी उपाय विफल होते गये।

माता-पिता एवं सारे परिवार जनों ने छाती पर पत्थर रखकर अपनी सबसे प्यारी पुत्री चंदना का वियोग सश्रु होकर स्वीकार कर लिया।

अकस्मात कौशाम्बी में अद्भुत चमत्कार घटित हुआ, महामुनि वर्धमान स्वामी के पारणा का सुयोग मिला।

दीर्घ अंतराल के बाद उनकी पारणा हुई। देवगण आकाश में जय जयकार करने लगे और रत्नवृष्टि होने लगी, देव दुंदुभी बज उठी, समस्त कौशाम्बी नगरी में हर्ष एवं आश्चर्य का वातावरण छा गया। अरे! यह किसका उत्सव है ? और जब जिनशासन सेवी नगर जनों ने जाना कि आज महावीर मुनिराज का पारणा हो गया है, उन्हीं के हर्ष उपलक्ष्य में देवगण यह महोत्सव कर रहे हैं तब भक्तों के आनंद का पार नहीं रहा वे हर्ष से रोमांचित हो गये।

मुनिराज महावीर ने आज आहार ग्रहण किया है। नगरी में यह समाचार फैलते ही लोग हर्ष से दौड़ते हुए उधर आने लगे कि चलो उस भाग्यशाली आत्मा के दर्शन करने चलें और अभिनन्दन करें। स्वयं महारानी मृगावती के भी भक्तिपूर्वक हर्ष के आँसु बह निकले।

वह भी सकुटुम्ब इस भाग्यशाली आत्मा की सराहना करने निकली, वह विचारने लगी- आज मेरी कौशाम्बी नगरी की शोभा बढ़ाने वाला कौन है ? इतने पवित्र हाथ किसके हैं ? किसका हृदय इतना महान और पवित्र है ? जिनके चरणों की धूलि के लिए इंद्र भी तरसता है ? उन वीर प्रभु के चरण जिस आँगन में पड़े हैं आज मैं अपनी आँखों को उन महान भाग्यवान के दर्शन से धन्य करूंगी। मुझे अब मात्र वह ज्ञान वैराग्य की मूर्ति देखना है जिन्होंने पावन भावना पूर्वक मेरे वीर प्रभु का पड़गाहन कर नवधा भक्ति से निर्विध्न, बिना अन्तराय के आहार दान देकर इस कौशाम्बी नगरी को धन्य कर दिया। अरे ! सब चलो! ऐसे हर्षित भावना से रानी मृगावती सपरिवार चन्दना के द्वार पर आ गई।

लोगों ने जब देखा कि वृषभदत्त सेठ की एक दासी के हाथ से प्रभु ने आहार लिया है तब सब नगरजन आश्चर्य चकित हो गये।

प्रभु को पारणा कराकर चंदना धन्य हो गई। चंदना विचारने लगी- अहो धन्य मुनिदशा! मानों चलते फिरते सिद्ध पधारे हों। धन्य निर्ग्रंथ दशा जयवंत वर्ते, जयवंत वर्ते।

आहार ग्रहण करके वे वीर योगीराज तो मानो कुछ भी नहीं हुआ ऐसे सहज भाव से वन की ओर गमन कर गये और वहाँ जाकर आत्मध्यान में लीन हो गये। जब तक प्रभु जाते हुए दिखाई दिये तब तक चंदना उन्हें आनंद से टकटकी लगाकर देखती रही। आकाश में देव और पृथ्वी पर जनसमूह चंदना के प्रति नतमस्तक होकर धन्यवाद देकर, उनकी प्रशंसा कर रहे थे, किंतु चंदना तो शांतिपूर्वक बैठी थी, उनकी गम्भीरता अद्भुत थी। आसपास के स्वर चंदना के कानों में आ रहे थे कि अभी-अभी हमने इन्हें बंधन में देखा था, इनके बंधन कहाँ गये ?

अरे मुझे बंधन में देखा था पर मैंने तो कभी अपने आप को बंधन में स्वीकार ही नहीं किया। यह तो बाहर के बंधन की बात कर रहे हैं, मैंने तो सदाकाल अंदर व बाहर से स्वयं को निर्बन्ध ही देखा है, स्वीकारा है, और अनुभवा है। जगत में ऐसी कोई बेड़ी नही जो मुझे बाँध सके। जो बंधन में था वह भी मैं नहीं, जो खुल गया वह भी मैं नहीं। मैं तो सदा निर्बन्ध रहने वाला ज्ञाता स्वभावी आत्मा ही हूँ। बंधन तब तक ही हैं जब तक बंधन की अनुभूति है। निर्बन्ध की अनुभूति होते ही बंधन स्वयमेव टूट गये। सबका एक ही स्वर था कि किसने बांधा था ? किसने खोला ? अरे! कर्मों ने बाँधा था, कर्मों ने ही खोला है।

बहुतों को आश्चर्य हो रहा था कि आहारदान और किसी के हाथ से नहीं

एक दासी के हाथ से हुआ है। नागरिकों के मन में प्रश्न उठने लगे कि यह चन्दना देवी है कौन ? कहाँ की हैं ? दिखने में तो पुण्यात्मा लगती है, इस प्रकार सब उनका परिचय प्राप्त करने को आतुर थे। इतने में राज्य की महारानी मृगावती बड़े ही भक्तिभाव से उन महान भाग्यशाली के दर्शन करने की भावना पूर्वक रथ से उतरी कि व्रीर प्रभु को आहार देने वाला पवित्र आत्मा कौन है ? वहाँ साधर्मियों का मेला लगा हुआ था। महारानी मृगावती बड़े ही उल्लसित एवं आनंदित भाव से आगे बढ़ने लगी। आहारदान देने के स्थान पर पहुँचते ही उन्होंने पूछा कौन है आहारदान देने वाला पुण्यशाली ? किसके हाथ से हुआ है पारणा ? उन पवित्र आत्मा को देखते ही महारानी मृगावती के मुख से निकल पड़ा-''अरे! हमारी छोटी बहिन चन्दना, महारानी मृगावती के नेत्र से हर्ष के आंसु ऐसे निकले कि समा नहीं रहे थे।

इतने में ही वृषभदत्त सेठ जी जो कि बेड़ी कटवाने लुहार को बुलाने के लिए गये थे वह भी आ गये। उन्होंने भी चारों तरफ आकाश में देवों और पृथ्वी पर जन समूह से चंदना की जय जयकार सुनी, देवकृत पंचाश्चर्य देखे, देखा कि आज वीर प्रभु की पारणा इस महान भाग्यवान के हाथ से हुई है, सच होने पर भी विश्वास करना कठिन लग रहा था कि हमारे ही घर वीर मुनिराज का पारणा हुआ है। कोमल हृदय सेठजी की आँखों में भी आंसू उमड़ पड़े, उनका रूकना मुश्किल हो रहा था।

चंदना - दीदी! यही मेरे विपत्ति में काम आने वाले सच्चे माता-पिता हैं। कोई न कर सके ऐसा अद्‌भुत संरक्षण देकर इन्होंने मुझे बचाया था। बस समझ लो कि इस दुनिया में ये मेरे लिए एक मात्र सच्चे हितेषी हैं। हम और हमारा परिवार सदैव इनका उपकार मानते हुए ऋणी रहेगा।

मृगावती- हे नगर श्रेष्ठी! आपका वात्सल्य और आज की घटना, इतिहास का अमर पृष्ठ बन गई, इतिहास में आप हमेशा-हमेशा के लिए अमर हो गये हैं।

सेठजी- बेटी ! तूने हमको पवित्र कर दिया, हम धन्य हो गये, तूने नगर की शोभा बढ़ा दी।( सेठजी की आंखो से आंसूओं की धारा बह रही है।)

चंदना - अथाह सम्पत्ति को एक धर्मी जीव की रक्षा के लिए समर्पित करने वाले मेरे धर्म पिता की आंखों में आंसू क्यों ?

सेठजी - बेटी ! तेरे जैसे धर्मी जीव तो जगत में अनोखे ही होते हैं। बेटी

धर्मी जीव धन खजाने, स्वर्ण की मुहरों से नहीं मिलते। उन्हें पाने के लिए बहुत विनय, वात्सल्य, वैयावृत्ति, समर्पण चाहिए। हमारी बेटी को कितना कष्ट उठाना पड़ा। कितना अन्याय सहना पड़ा।

चंदना - पिताजी! स्वभाव में कुछ होता नहीं और परिणमन में भी अचानक अन्याय पूर्वक कुछ होता नहीं। जो भी होता है, क्रमबद्ध ही होता है। वर्तमान की प्रतिकूलताएँ तो पूर्व पाप के उदय का फल है। वर्तमान में धर्मी जीवों के प्रति समर्पणता से अनन्त बंध का अनन्तवां भाग भोगना पड़ता है, एवं धर्मी जीवों के प्रति जरा सी भी मध्यस्थता या उपेक्षा का भाव हो तो छोटी -छोटी गलतियों की भी अनन्तगुणी सजा भोगनी पड़ती है। जब तक बुद्धिपूर्वक राग की दशा है तब तक यही भावना है कि समस्त मन-वचन-काय एवं संयोग, धर्म प्रभावना एवं आप जैसे समर्पित धर्मी जीवों की सेवा में लगे रहेगें भले ही प्राणों की कीमत दाँव पर लगाना पड़े।

सेठजी - मेरी बेटी! मैं क्षमा माँगकर समस्त दण्ड सहने को तैयार हूँ।

चंदना - पिताजी! संसार में मान-अपमान, इष्ट अनिष्ट सुख दुःख उसे भासित होता है जिसका चित्त विक्षिप्त होता है।

हम तो सिद्धों के कुल के हैं, सबको सिद्ध स्वरूप ही देखते है, चैतन्य ही देखते हैं, हम किसी को राग-द्वेष वाले देखते ही नहीं हैं।

पिताजी मेरे लिए अनुकूल चलने वाले तो उपकारी हैं ही परन्तु प्रतिकूल चलने वाले भी परम उपकारी एवं करूणा के पात्र हैं, पर में इष्ट - अनिष्ट की कल्पना करना ही दुख को निमंत्रण देना है। वस्तु स्वरूप का विचार करें तो दुख का अस्तित्व ही कहां ? दुख का वेदन तो हम अपनी मिथ्या मान्यता के कारण कर रहे हैं।

सेठजी - बेटी! निर्दोष तत्व की दृष्टि के बिना या निर्दोष तत्व की श्रद्धा के बिना ऐसा कौन सोच सकता है, कौन कह सकता है। अज्ञानता में प्रमाद से कदम-कदम पर दूसरों के दोष देखने की व दूसरों के दोष कहने की आदत पड़ी रहती है। बेटी तुम्हें पाकर हम धन्य हो गये।

चंदना - पिताजी! अगर हम सामने वाले के औदयिक एवं क्षायोपशमिक भावों को गौण करें तो हम वात्सल्य दे सकते हैं। भेदज्ञान समता भाव एवं सहनशीलता रखें तो वात्सल्य के पात्र बन सकते हैं। अपने उदय तथा भवितव्य को सहजपने स्वीकारना ही तनाव मुक्ति का सहज उपाय है।

मृगावती - हे नगर श्रेष्ठी धर्म पिता! अब हमें आज्ञा दीजिए ताकि हम अपनी छोटी बहिन को घर ले जायें।

सेठजी - हे राजमाता! आप राज्य की स्वामिनी हैं आपको आज्ञा की जरूरत नहीं है, लेकिन हम हृदय के कलेजे को कैसे कह दें कि ले जाओ। हे राजमाता! हमारे घर से कल्पवृक्ष मत उखाड़ो। अरे! क्या सच में कल्पवृक्ष हमारे घर से चला जायेगा ? अरे! हम दरिद्र हो जायेंगे, अनाथ हो जायेगें, सूने रह जायेंगे।

मृगावती - अरे! नगर श्रेष्ठी यह कल्पवृक्ष तो सारी दुनिया का कल्पवृक्ष है सचमुच धर्मी जीव ही कल्पवृक्ष होते हैं ये तो सभी के होते हैं। सब इनके होते हैं। इसलिए इनका कभी अभाव नहीं समझना। जगत में अकेले और सूने तो वो हैं जिनके हृदय में जिनेन्द्र भगवान के प्रति भक्ति नहीं हैं, जिनवाणी का श्रवण नहीं है, सत्पात्रों के प्रति आदर पूर्वक दान का भाव नहीं है, जहाँ वात्सल्य का अभाव है, ज्ञानी जीवों को और कष्ट में पड़े जीवों को कष्ट झेलने के लिए विषयासक्त होकर, वात्सल्य रहित होकर, मिथ्या बहाने बनाकर अकेला छोड़ देते है उनके सारे पुण्य क्षीण हो जाते हैं, प्राकृतिक प्रकोप आते हैं, कष्ट उठाते हैं। अरे! पिताजी आपका हृदय तो धर्मी जीवो के प्रति भक्ति में अत्यंत सना एवं पगा है आप सूने कैसे रहोगे ?

चंदना - हे माताजी-पिताजी! मेरे कारण आपको दुखी होना पड़ा मुझे क्षमा करना।

सेठजी - बेटी, तुझे क्षमा माँगना शोभा नहीं देता। तू तो क्षमा मूर्ति है।

चंदना - क्षमा माँगने से दोष विस्तार को प्राप्त नहीं होते, मान कषाय गलती है, वातावरण सुधरता है। गुरूजनों को प्रसन्नता होती है। बड़े जन विनय मात्र से प्रसन्न हो जाते हैं। क्षमा न माँगे तो अंदर घुटन रहती है। अतः निर्विकल्प होने के लिए क्षमा मांगना जरूरी है।

सेठानी - वात्सल्यमयी बेटी! मैं तेरे साथ संगिनी बनकर जीवन धन्य करना चाहती हूँ।

सेठजी - देह और कषाय से आत्मा को भिन्न जानने वालों की सेवा, देह, कषाय और आत्मा को एक मानने वाले कैसे कर सकते हैं ? भ्रम, भय, अहंकार, मायाचार, जिनके जीवन में हों वे ज्ञानीजनों की सेवा एवं सत्संग से दूर हो जाते हैं।

चंदना - पिताजी आप माताजी को दोष नहीं देना उनके निमित्त से तो आज मेरा सौभाग्य खिल गया।

बहिन मृगावती का अति आग्रह वैरागी बहिन को घर ले तो आया लेकिन वह तो अपने में ऐसी समायी कि कहीं देखने को उनकी आँख ही नहीं उठ रही है। बाहर से तो महलों की तरफ जाती हुई दिख रहीं हैं लेकिन वहाँ से निकलने को छटपटा रहीं हैं।

महारानी मृगावती विचारों के सागर में डूबती तैरती अति उत्सुक हो रहीं हैं कि- उनकी छोटी बहिन अचानक घर के उपवन में से कैसे, कहाँ विलीन हो गयी थी ? कैसे कौशांबी आयी ? अपनी विपत्ति की सूचना राजमहल तक क्यों नहीं पहुँचाई ? कैसे महामुनि के पड़गाहन का सुअवसर उन्हें मिला।

उन्होंने अत्यंत उदासीन निष्पृही चंदना से पूछा - चंदना ! अचानक घर के उपवन में से कहाँ विलीन हो गई थीं तुम ? तुम्हारे साथ क्या अनहोनी हो गई थी ? यहाँ आकर भी हम तक समाचार पहुँचाना क्या असंभव था तुम्हारे लिये ? हम सभी बहिने, माता-पिता, सभी का दिन-रात तुम्हारा स्मरण करते-करते बीता है। क्या तुम्हें नहीं पता हम अपनी सबसे छोटी लाड़ली बहिन को प्राणों से भी ज्यादा चाहते हैं ?

चंदना - यह सब जानकर क्या करोगी दीदी। जैसे पुण्योदय से यह शरीर सुरक्षित दिख रहा है, वैसे असीम पुण्योदय एवं पुरूषार्थ से शील एवं सम्यकत्व भी वैसा ही सुरक्षित है। जो संसार की विचित्रता का रूप मैने देखा है, उसकी याद करके मैं जब अपने पूर्व के विराधक परिणामों को याद करती हूँ तो मन काँप जाता है, हृदय फटता है। संक्षेप में इतना समझ लो दीदी क्षण भर के राग की पूर्ति के निमित्तों के लक्ष्य से यदि हमसे किसी भी जीव की या धर्मी जीवों की अवमानना, अनादर, उपेक्षा होती है अथवा किसी भी जीव के स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है तो उसका फल बड़ा भयंकर दुःखदाई होता है। भोगते समय हम तिलमिला जाते हैं, कोई दुःख बाँटने वाला नहीं दिखता।

मृगावती- नहीं, चंदना! इतना पर्याप्त नहीं है। हम वह सब सुनना चाहते हैं कि आराधना के काल में भी पूर्व में किये गये विराधक परिणामों का फल कैसा आता है ? तुम पाँच इन्द्रियों के विषयों के निमित्तों की उपेक्षा करके जीव मात्र के स्वाभिमान में, देव-शास्त्र- गुरू के आदर में कैसे सावधान रहीं ?

चंदना - दीदी! अज्ञानी तो पूर्व की परिस्थितियों को याद कर करके दोहराते रहते हैं और संक्लेशता बढ़ाते रहते हैं लेकिन धर्मी ज्ञानी जीवों को विश्व

का कण-कण वैराग्य में ही निमित्त होता है। वह तो अपनी वीतरागता को ही बढ़ाते हैं। फिर भी यदि इतनी तीव्र जिज्ञासा है तो में सुनाने का प्रयत्न करती हूँ।

हर दिन की तरह वह भी एक सामान्य सा दिन था। हर रोज की तरह उस दिन भी मैं सभी सखियों के साथ घर के उपवन में क्रीड़ा करने निकल गई थी। हम सभी सखियाँ अपनी-अपनी क्रीड़ा करने में मग्न हो गईं कि अचानक पीछे से किसी बलिष्ठ हाथों ने मुझे जकड़ा और ऊपर उठा ले गया। उसने मेरा मुँह इस प्रकार पकड़ रखा था कि मेरी चीख भीतर ही घुटकर रह गयी- किसी को पुकार सकूँ इतना मौका भी नहीं मिला। कहने में तो समय लग रहा है पर घटने में क्षण मात्र भी नहीं लगा। मेरे नयनों के सामने अँधेरा छाने लगा, चेतना लुप्त हो गयी और मैं मूर्छित हो गयी।

{6}

जब मेरी मूर्च्छा टूटी तब मैंने अपने आप को एक भयानक वन की एक ऊँची चट्टान पर पाया। दूर एक विमान खड़ा था । एक पुरूष स्त्री झगड़ रहे थे, पुरूष अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए पामर सा दिख रहा था।

इतना समझ में आया कि पुरूष मेरा अपहरण करके ले जा रहा था, उसे पता नहीं था कि उसकी मलिन बुद्धि से त्रस्त सदा शंकालू सहचरी आज उसका पीछा कर रही है। उसे देखते ही उसने मुझे भयानक अटवी में छोड़ दिया। जहाँ चारों ओर निर्जनता का वातावरण था। दूर-दूर तक मानव के अस्तित्व का कोई चिह्न तक नहीं था। मैं विचारने लगी सचमुच हम कर्म के उदय से दुखी नहीं होते, वर्तमान पाप परिणाम से दुःखी होते हैं और पाप परिणाम मेरा स्वभाव नहीं है। अपनी कर्मोदय की अवस्था को समता भाव से सहना ही हितकारी है। जो जीव कर्म फलों से जुड़ते हैं, सुख दुःख मानते हैं, इष्ट अनिष्ट की कल्पना करते हैं, हर्ष विषाद करते हैं, वे ही तो नया कर्म बाँधते हैं। अरे जिस कर्म को एवं कर्म से मिलने वाले फल को हमने भिन्न जान लिया वो कर्म हमारा क्या करेगा, हममें तो कर्मफल से निरपेक्ष रहने की अद्भुत सामर्थ्य है।

अज्ञानी स्थित प्रकृति स्वभाव सु, कर्म फल को वेदता ।
अरूज्ञानी तो जाने उदयगत कर्म फल, नहीं भोगता।।

मृगावती- सचमुच, बहिन! हर स्थिति में उदय का विचार कर समता रखने वाला जीव ही विचारों की विपरीतता एवं संकीर्णता से बचा रहेगा और दुर्विकल्पों में पड़ा रहने वाला जीव निश्चित ही दुःखी होता रहेगा।

चंदना - बहिन! पदार्थों की स्वतंत्रता स्वीकार किये बिना जीव सब को अपने अनुसार परिणमाने के लिए उलझता है। विषय कषायों की पूर्ति में सुख बुद्धि से चलने वाले विपरीत विचारों से बड़ा हमारा कोई शत्रु नहीं है कि जो हमें धर्म, धर्मायतन, धर्मी जीवों से दूर करता है अर्थात समय, शांति, बुद्धि, पुण्य खोता है। अपनी कषायों की पूर्ति को अज्ञानी जीव सुलझना मानता है। जबकि जिनेन्द्र देव के स्मरण एवं तत्व विचार से पर पदार्थों में इष्ट अनिष्ट की कल्पना मानना छूट जाती है तब यह उलझन से सुलझता है। अब और दृढ़ता से विचार आ रहा था कि जो शुद्धात्मा और पंचपरमेष्ठी वहाँ शरण थे, वे ही यहाँ शरण हैं। जो यहाँ शरण नहीं हैं वे वहाँ भी शरण नहीं थे। मैं अकेली तो हूँ लेकिन असहाय नहीं।

मस्तक पर जिनबिम्व विराजे जिव्हा पर प्रभु नाम
इसी विधि हो जाए पूरा, जीवन का संग्राम।।

पुण्य-पाप के उदय में विपरीत कल्पना करने वाला जीव, देव-गुरू के बिना भ्रमता है उसे नरकादि में न देव मिलते हैं न गुरू। एक बार अपने को देहादिक से भिन्न रागादिक से न्यारा ज्ञाता स्वरूप अनुभव करके तो देखो, सुख का मार्ग अपने आप बन जाएगा। जिन्हें विश्व में मात्र स्वयं की एवं पंच परमेष्ठी भगवंतो की शरण भासित होती है, वे धन्य हैं। ज्ञान में ज्ञान का बिम्ब है, ज्ञान में ज्ञेय सदृश ज्ञेयाकार होने से मूढ़ प्राणी ज्ञान में ज्ञेय को तो जानता है किन्तु अपने जाननहार को नहीं जानता। अपने ज्ञान में अपने जाननहार को जान लेना यही कला है। स्वभाव से जाननहार ही जानने में आता है। ज्ञेय सहज ज्ञेयाकार रूप रह जाते हैं उसी का नाम उदासीनता है। निर्वांछकता में जो विषयों का त्याग वर्तता है, उसमें कितना सुख है, विषयों में फंसने वाला कितना दुःखी है। विषय भोगों से हटाने वाला परम मित्र जिनशासन की प्रशंसा के अद्भुत भाव आ रहे थे।

मृगावती- इतनी भयानक अटवी में जंगली जीवों को देखकर डरी नहीं बहिन ?

चंदना - बहिन! भयानक वन के सभी जीवों को देखकर विचार आ रहा था कि अरे प्रमाद रूप प्रवर्तन करके इन जीवों की विराधना न हो जाए। अनंतबार अपने को भूलकर इन गतियों में हम रहे हैं। महा भाग्य से हमें ज्ञानाभ्यास करने का अवसर मिला है। ज्ञानाभ्यास का फल तो यही है कि जाननहार को जानने से ही ज्ञान और सुख होता है।

पाप के उदय से आता उपसर्ग पुण्य के उदय से दूर होगा। परन्तु ज्ञान की स्वच्छता में तो अभी भी दूर दिखाई दे रहा है। ज्ञान की स्वच्छता तो यही है कि ज्ञान ज्ञानस्वरूप ही रहता है। अहो! ज्ञान की स्वच्छता में तो ज्ञान निजरूप भासित होता है, ओर वे उपसर्ग भिन्न रूप भासित होते हैं। ऐसा विश्वास आने पर सहज आनंद ,सुख, प्रभुता का वेदन हुआ, आत्म बुद्धि, सुख बुद्धि अंतर में उत्पन्न हुई और राग में से सुख बुद्धि उड़ गई। इन्द्र के भोग और चक्रवर्ती की संपदा से वैराग्य उत्पन्न होकर, अतिन्द्रिय स्वसंवेदन और आनंद के बल से इस वेदन के सामने कर्म के उदय से हुआ थोड़ा राग काला नाग जैसा दिखता हुआ टिक नहीं पाता था।

जैसे जैसे रात बीतने लगी वैसे-वैसे अटवी की नीरवता बढ़ने लगी। हिंसक पशुओं की गर्जनाएँ क्रमशः मंद और बंद होती गईं। बीच-बीच में कुछ पशु पक्षी अपनी उपस्थिति का आभास दे जाते थे।

बहिन सचमुच ज्ञानीजीव हर प्रकार के कर्मोदय के समय भी कर्म से भिन्न अपनी ज्ञायक सत्ता को भिन्न देखते हुए परम शांति का अनुभव करते

हैं। अपने को ज्ञानस्वरूप अनुभव करना ही ज्ञानी का जीवन है। चाहे जैसे कर्म के उदय में भी ज्ञानी कर्म की निर्जरा करते हैं। अपने मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करते हैं। वर्तमान में सुखी एवं भविष्य में भी सुखी रहते हैं।

मैं निरंतर ज्ञान रूप ही हूँ। अपने मैं परिपूर्ण, ध्रुव, वैसा का वैसा। पाप एवं पुण्य के उदय से अत्यंत निरपेक्ष, किसी भी प्रकार के पाप के उदय से मेरे में कुछ घटता नहीं। पुण्य के उदय से कुछ बढ़ता नहीं । पाप एवं पुण्य के उदय से अत्यंत भिन्न ही हूँ । मैं स्वयं सुख स्वभावी जब पुण्य के उदय से सुखी नहीं होता तब पाप के उदय से दुखी होने का अवकाश ही नहीं है। इस प्रकार अपने आश्रय से अद्भुत सुख शांति प्रभुता का वेदन करती उस पाषाण शिला पर रात भर बैठी रही ।

{7}

सूर्य की प्रथम किरण फटने से पहले ब्रह्म बेला में घर की तरह यहाँ भी मुझे सबसे पहले वीतराग भगवंतो की याद आने लगी। मैं उनके गुणों के अनुराग में उन्हीं जैसे अपने स्वरूप के स्वाद के लिए पुरूषार्थ करने लगी।

अहो! हर समय ज्ञान की सीमाएँ प्रतिबंधित हैं जिसके भीतर किसी का प्रवेश है ही नहीं। बाहर परिस्थिति का आकार ज्ञान ने स्वयं अपने भीतर बनाया है। ज्ञान का चित्र, ज्ञेय के चित्र से मिलता-जुलता है तो हमने यह मान लिया कि वह ज्ञेय ही है। जो शुद्ध ज्ञान, ज्ञेयाकार नहीं पर ज्ञान का आकार है और वह शुद्ध रूप से ज्ञान ही है। ज्ञान अत्यंत निरपेक्ष तत्व है इसलिए ज्ञान में कोई मदद ज्ञेय की होती नहीं जिस समय ज्ञान में जो आकार बनता है उस समय उस पदार्थ से अत्यंत निरपेक्ष ज्ञान स्वयं अपनी उपादान सामग्री से वह आकार तैयार करता है उसमें ज्ञेय का कोई अंश नही मात्र ज्ञान ही है।

प्रातःकाल होते ही पक्षियों ने चहकना प्रारम्भ किया। पशु अपनी शरण स्थली छोड़कर निकलने लगे।

इसी बीच कुछ अस्पष्ट मानव स्वर मेरे कर्ण गोचर हुये। वह मानव ध्वनि दूर कहीं वृक्षों के झुरमुट से आ रही थी। उसी समय पक्षियों के बहुविध कलरव के मध्य भी मानव के बोल पहचानने में मुझसे कोई भूल नहीं हुई।

आशंका से भरी मैं अपनी पूरी चेतना को कर्णगत करके, जहाँ से वह ध्वनि आ रही थी, उस ओर देखने लगी। उसकी दृष्टि से ओझल होने का उस पाषाणशिला पर मेरे पास कोई उपाय नहीं था। मुझे लगा कि ये यहाँ के रहने वाले भील लोग हैं।

**''हर क्षण स्वयं के वैभव को भूलने वाला निश्चित ही, पर की ममता में अटक ही जाता है।''**

भील नजदीक आता गया उस ओर से, सर्वथा निस्पृह और निरपेक्ष, नत नयन, निर्भय और मौन मैं अपने स्थान पर बैठी रही। घुटनो के बल मेरे सामने भील आकर बैठ गया। भील के अंदर की वासनाएँ बाहर याचना के रूप में प्रगट हो रहीं थीं। मुझे तो भील अत्यंत करूणा का पात्र दिख रहा था। अपने मन के भावों को वह अपनी अभद्र चेष्टाओं एवं वचनों से प्रकट कर रहा था, उसने कोई कसर बाकी नहीं रखी थी। मैं सोच रही थी आखिर कैसे इसे समझाऊँ कि निज विषय स्वरूप में संतुष्ट हुए बिना विषयों की चाह नहीं मिटेगी। विषयों की चाह, तब तक ही है कि जब तक हमें अपना ज्ञानानंदमय स्वरूप का विषय नहीं मिला।

इन्द्रिय विषयों में अज्ञानी को ही सुख लगता है, ज्ञानी को नहीं। दूर से ही सुख लगता है, पास जाने पर नहीं। जो ज्ञान का अभ्यास नहीं करते, बार-बार ज्ञानस्वरूप को नहीं ध्याते, वे विषयों के चाह रूपी दावाग्नि से निकलने में असमर्थ हैं। कषायों को विषय मिलने पर तत्काल तो शांतता दिखती है लेकिन

थोड़ी देर बाद अग्नि की तरह भड़कती है। अपने को जिस समय जाननहार पने जानता है उसी समय अतीन्द्रिय आनंद झरता है। उसका पान कर सहज तृप्त-तृप्त हो जाता है। स्वयं-स्वयं में ही तृप्त होने पर विषय चाह की दावाग्नि शांत हो जाती है। विषयों की पीड़ा मरण से भी अधिक है। भँवरा मरकर भी गंध नहीं छोड़ना चाहता। धन्य है ! ज्ञानी जीवों को जो ज्ञायक की महिमा गाते-गाते विषयों की चाह की देहरी नहीं उल्लंघते विषयों की चाह शांत होगी, सहज होगी। स्वयं को देखते हुए विषयों की चाह स्वयं बुझती है ।

हे भव्य! तू इनको शांत करने मत जा, विपरीत मान्यता को छोड़, जाननहार को जानने पर ही विषयों की चाह शांत होती है। जिन्हें सुखी होना है, उन्हें एक निराकुल मार्ग है कि ज्ञानाभ्यास में प्रवर्तन करें। अपने को ज्ञाता स्वरूप अनुभवो। ज्ञाता सुखी होता है, तृप्त होता है, स्वतंत्र होता है।

अरे दुर्जन, दुर्व्यसनी, दुराचारी जीवों से भी कठोरता से बात क्यों करें। धर्म-धर्मायतन धर्मी जीवों से उपेक्षा पूर्ण व्यवहार करने वाले की तो सम्यग्दर्शन की पात्रता ही नष्ट हो जाती है।

मैंने कठोरता से नहीं परन्तु दृढ़ता से स्पष्ट, कोमल एवं संक्षिप्त शब्दों में बता दिया कि ''मुझे छूने वाले को मेरी निष्प्राण देह मिलेगी, मैं नहीं''।

मेरे भावों में उसके प्रति कोई कड़वाहट नहीं थी। आखिर सचमुच में वह भगवान ही तो है, परिपूर्ण परमात्मा ही तो है, उससे राग द्वेष कैसा ? आखिर वह समझ गया कि यह साधारण नारी नहीं है। अगर इसके साथ जबरदस्ती की तो निश्चित ही प्राण दे देगी। तत्काल ही उसने दूसरा निर्णय ले लिया कि इसको बाजार में ले जाकर बेच देना चाहिए, कम से कम धन तो हाथ लगेगा।

बाहर पराये जैसा व्यवहार किसी से करना नहीं, और अन्तर में किसी को अपना समझना नहीं ।

उपसर्गों के बीच मैं निरूपसर्ग ही हूँ। सचमुच मेरे ज्ञान का हर परिणमन स्वच्छ और निरपेक्ष है। चाहे महल हो या जंगल, चाहे आदर हो या अनादर, **हर क्षण ज्ञान का परिणमन ज्ञेयों से निरपेक्ष ही तो हो रहा है। ज्ञान-ज्ञान रूप ही तो रहता है। ज्ञान के विशेषों में विशेषता कहाँ है ? ज्ञान का हर कोना विशेष ज्ञान का ही तो बना हुआ है। बस मैं तो अपनी ध्रुव चट्टान पर बैठकर बारंबार श्रद्धा की दृढ़ता ही दृढ़ करती रही कि मैं चैतन्य मूर्ति ही हूँ ।**

भील अपने साथियों के साथ मुझे बाजार में बेचने के लिए निकल पड़ा । मैं विचारने लगी हे प्रभु ! मेरी इतनी प्रार्थना है कि मैं किसी को दोषी न ठहराऊँ।

## {8}

मुझे बेचने वाले के प्रति और खरीदने वाले के प्रति माध्यस्थ भाव ही रहे। मैं इसी उहा पोह में थी कि कब हाट बाजार आ गया, पता ही न चला। सामने भारी आभूषणों से लदी मुँह में ताम्बुल चबाती एक अधेड़ वाचाल महिला रूचि लेकर मेरी देह निरीक्षण परीक्षण कर रही थी। लोगों की चर्चा पर ध्यान गया तब मुझे ज्ञात हुआ कि वह कौशाम्बी की कोई बड़ी गणिका है। वैसे ही एक-दो और महिलाएँ भी मेरी ओर निहारती वार्तालाप कर रही थी कि आज इसका भविष्य नक्की होगा। यह दासी के रूप में जायेगी ? या वेश्या के रूप में ?

अरे! इस बाजार में मैं कहाँ से आ गयी ? परन्तु मुझे किसलिए आकुलित होना चाहिए। जो कुछ भी बन रहा है वह मेरे कर्म का ही तो फल है। मैं अपने कर्म फल को ही तो भोग रहीं हूँ। ये परिस्थितियाँ तो निमित्त मात्र हैं, इनका कोई दोष नहीं है। तो इनके प्रति अस्वीकृति भाव क्यों ? ईमानदार को तो कर्ज चुकाने में हर्ष होता है उसी प्रकार धर्मी जीवों को पूर्व कर्मोदय का कर्ज चुकाने में हर्ष होता है।

मेरी अशान्ति का कारण क्या है ? जो कुछ भी बन रहा है, उससे अन्यथा क्यों ? ऐसी प्रवृत्ति का भी मैं त्याग करती हूँ। जो कुछ भी परिस्थिति बन रही है, मैं उसी को सहज शांत भाव से स्वीकार करती हूँ ।

एक ने बोली लगायी दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ, दूसरे ने चुनौती दी पंद्रह हजार स्वर्ण मुद्राएँ। फिर वे एक दूसरे को चुनौती देते हुए बोली बढ़ाते गये। एक लाख स्वर्ण मुद्राओं तक दाम पहुँच गया । समुदाय में से किसी ने भील को परामर्श दिया, यह तो बहुत अधिक दाम मिल रहा है। हाट की सबसे अधिक बोली लगी है, अब तो दे देना चाहिए।

मैं विचारने लगी, हे मेरे नाथ! इस बाजार में खड़ी तो हूँ परन्तु मैं तो अपना समर्पण प्रभु चरणों में पहले ही कर चुकी हूँ । तेरी आज्ञा में पहले से ही अर्पित हो चुकी हूँ, तू ही मेरा स्वामी है, मैं तेरी ही दासी हूँ । न कोई इच्छा, न कोई माँग। हे प्रभु! एक आप ही, एक आप ही शरण हो।

भील कुछ बोल पाता इससे पूर्व............

( इसी समय नगर श्रेष्ठी श्री वृषभदत्त का वहाँ से गुजरना )

सेठ- अरे ! यह तो कोई पवित्र कन्या लगती है, अवश्य ही कर्मों की सताई हुई है। इसके झुके नयनों में शांतता, निर्दोषता, निर्मलता और मुख निर्विकार दिख रहा है। अरे! यह तो णमोकार मंत्र का जाप भी कर रही है, ऐसे घोर संकट के समय। अवश्य ही यह कोई उच्च संस्कारी जैन कन्या है। धन्य है इसकी धैर्य और पवित्रता। मैं अपनी पुत्री के रूप में इसका पालन करूंगा। चाहे मुझे सारी संपत्ति ही दाँव पर क्यों न लगाना पड़े, वह भी कम है, मेरी अथाह सम्पत्ति किस काम की। सेठ जी ने पाँच लाख स्वर्ण मुद्राओं की बोली लगाई और कहा कोई है बढ़ाने वाला। सबको चौंकाती एक गर्वीली बोली गूंज उठी। सबके नेत्र उस बोली लगाने वाले की ओर उठे। वे इस हाट के व्यवसायी नहीं थे, उनके नेत्रों में पवित्रता और सहानुभूति की झलक थी। वह इन सबसे पृथक कोई सहृदय और कुलीन व्यक्ति थे। मुझे लगा देवदूत की तरह मेरा उद्धार करने के लिए विपत्तिकाल में प्रकट हो गए हैं।

हे प्रभु ! हर जगह, हर समय आप,आपके शासन का विश्वास करा ही देते हैं। इसलिये मुझे कोई भय नहीं, कारण कि सदैव आपके प्रसाद से मेरी रक्षा हुई है। मेरी यात्रा सरल है क्योंकि आप साथ-साथ चल रहे हो। चढ़ती-पड़ती धूप-छाया में जय -पराजय, हर्ष-शोक, हास्य-रूदन यह सब भाग्य का खेल है। संघर्ष समस्या से मैं घबराती नहीं क्योंकि ऐसी कौनसी समस्या है जो वीतरागी, सर्वज्ञं भगवंतों एवं निर्ग्रंथ दिगंबर संतों के प्रति श्रद्धान एवं समर्पणता से सुलझ न सके।

भद्र पुरूष बोले -भय दूर करना बेटी! मैने तुझे पुत्री तरीके से खरीदा है, इस आदेश में अहंकार नहीं, वात्सल्य की मिठास थी।

रथ राज पथ पर दौड़ने लगा।

पूर्व में अतीन्द्रिय आनंद को भूल कर पंचेन्द्रियों के विषयों में रमे होगें तो अभी ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है।

अब तो चिद्रूप के आश्रय से प्रगट होने वाला जिनरूप सुहाने लगा है इसलिए ऐसी परिस्थिति का सामना करने की शक्ति प्रगट हुई है, पाप एवं प्रमाद के फल को देख-देख कर सावधान होने की जरूरत है, दुखी होने की नही। रथ एक भव्य भवन के सामने रुका। द्वारपाल ने बढ़कर द्वार खोला और हम भवन में आ गये।

सेठजी का व्यवहार औपचारिकता एवं शिष्टाचार वाला नहीं अपितु सहज एवं वात्सल्य पूर्ण था। यह देखकर साधर्मी के सगे पने का आश्वासन मिल रहा था।

धर्मी जीव, धन - वैभव को पाने से खुश नहीं होते बल्कि धर्म, धर्मायतन, धर्मी जीवों के प्रति सर्वस्व अर्पित करने में खुश होते हैं। सेठ जी सेठानी से बोले, 'मैं तेरे लिए अनमोल भेंट लाया हूँ। नारी बाजार से निकलते समय एक कुंवारी कन्या नीलाम हो रही थी। इस कन्या के निर्दोष चेहरे में मुझे अपनी पुत्री दिखाई दी इसलिए मैं इसे खरीद कर लाया हूँ।'

सेठानी - कितने में खरीदी ?

सेठजी - पाँच लाख स्वर्ण मुद्राएँ।

सेठानी - पाँच लाख ?

सेठ - अरे पाँच लाख तो क्या इस पवित्र आत्मा की रक्षा हेतु पच्चीस लाख स्वर्ण मुद्राएँ भी माँगी होतीं तो भी कम थीं।

सेठानी - बेटी, हम तेरा परिचय जानना चाहते हैं, तू कौन है ? किस देश की है ? क्या नाम है ?

चंदना - मैं कौन हूँ, कहाँ से आई हूँ, किस देश की हूँ, यह प्रश्न तो मेरे अंदर दिन-रात गूंजते रहते हैं। मैं खोज रही हूँ अपने अस्तित्व को ? जो मिल जाये तो सारे दुखों का अंत आ जाए।

सेठ - बेटी, तेरे माता-पिता कौन है ?

चंदना - समय के बहाव में क्षण भंगुर दुनिया के रिश्ते कहाँ रह गये सो पता नहीं ?

सेठ - मतलब, पूर्व का कुछ याद नहीं है बेटी ?

चंदना - पिछले पन्ने खोलकर विषाद की कथा शुरू करने से क्या लाभ ?

सेठ - क्या बेटी तुझे तेरा नाम भी याद नहीं है ?

चंदना - हे तात! बस मुझे तो प्रभु का नाम ही याद है, वीतरागी देव ही मेरे पिता-माता, बाँधव, रक्षक हैं।

सेठजी - धन्य है बेटी! तूने अपने खाली हृदय को भगवान की भक्ति से भर

लिया है। क्या तेरी पुकार भगवान सुनेंगे ?

चंदना - मैं भगवान की पुकार सुन सकूँ, यही प्रार्थना है।

अहो! जैनधर्म से रहित चक्रवर्ती पद भी अच्छा नही है। भले ही दासीपना हो परन्तु जैनधर्म सहित हो तो वह भी अच्छा है।

{9}

कुछ दिनों से मेरा मन आशंकाओं से घिर जाता था। मुझे ज्ञात हो रहा था कि अभी मेरे दुर्भाग्य का अंत नहीं आया है। सेठानी के मन में शंकाओं के अंकुर उपजने लगे। संदेह उस अमरबेल के समान है जो बिना जड़ के होती है और दूसरों के सहारे पनपती है। संदेह का बीज पनपता शीघ्र है, पर नष्ट मुश्किल से होता है। सेठानी के मन में संशय के अंकुर उपजने लगे। शंका अनेक दोषों को जन्म देती है, शंका का अभाव होने पर सर्व दोषों का अभाव सहज ही होता है

मुझ जैसी भाग्यहीन को वेश्या के हाथ से बचाकर घर में शरण देना, मेरी विपत्ति से पिघल कर पुत्री की तरह मेरी कुशल कामना करना, क्या यही इस महापुरूष का अपराध बन रहा था। जो भी हो, पर मुझे लग रहा था कि सेठानी को इस घर में मेरा आना अच्छा नहीं लगा।

सेठानी की तीक्ष्ण शंकालु दृष्टि हर पल हमारे व्यवहार की चौकसी करती रहती। कई बार वे अपने पति से अकारण रूष्ट होकर झगड़ने लगती। अपशब्दों का प्रयोग भी कर बैठतीं। उनकी शब्दावली से सेठजी का हृदय विधता ही होगा। मुझे भी मर्मांतक पीड़ा होती थी, मन सिहर जाता था।

पिताजी की अनुपस्थिति में मेरे रूप को लेकर या पिताजी के स्नेह को लेकर व्यंग्यबाण चारों ओर सनसनाते निकलते रहते, जिससे अन्य दासियों के हृदय भी पिघल जाते थे।

दासी- अब हमसे ज्यादा नहीं देखा जा रहा है, चंदना।

चंदना - बहिन! अगर वे कठोर, कुटिल और क्रूर रूप परिणमन करने के लिए स्वतंत्र हैं तो हम भी मोह छोड़कर भेदज्ञान करके सहज सरल शांत रहने के लिए स्वतंत्र हैं।

दासी - कहाँ तक सहें ?

चंदना- अरे ! अपनी सीमा में बैठो, फिर कहीं तक मत सहो। वे अपमान करने के लिए स्वतंत्र हैं तो हम भी मान अपमान से रहित मार्दव स्वभाव का अनुभव करने के लिए स्वतंत्र हैं। हम पराधीन नहीं हैं, जो हमें दुखी होना पड़ेगा। विवादों में उलझकर चित्त को कलुषित करते रहना मानव जीवन की सबसे बड़ी हार है।

दासी- एक बार तो सेठजी से कहकर ही रहेंगे।

चंदना - जगत भी न मानने के लिए स्वतंत्र है तो हम भी भगवान की मान लेने के लिए स्वतंत्र हैं। भगवान कहते हैं कि कोई किसी को मनवा सकता नहीं, किसी का मानना किसी का हमारे अनुसार परिणमना, हमारे सुख के लिए जरूरी नहीं। जगत की मान्यता से, जगत की प्रवृतियों से, जगत के परिणमन से हमारा सुख निरपेक्ष है।

दासी - लेकिन यह तो महापुरूषों का पंथ है।

चंदना- सत्य कहा, हम भी तो महापुरूषों के पथ के पथिक हैं। निर्बंध दशा का पथिक, मुक्ति जिसका लक्ष्य है, वह बंधन को स्वीकार नहीं करता।

जो संबंध हैं, उन्हें भी मिथ्या समझो, नये सबंध जोड़ने की तो बात ही नहीं है। मुक्तिमार्ग में कोई भी अनुबंध प्रतिबंध नहीं होते, न वचनबद्ध होते हैं, न वचनबद्ध करते हैं।

धर्मी जीव जरा-जरा सी बातों में अटकते नहीं, भयों से डरते नहीं, प्रलोभनों में फँसते नहीं, मनमानी करते नहीं। जिस प्रकार से ज्ञान-वैराग्य बढ़े उसी प्रकार से चलते हैं, स्वरूप के प्रति ही जिम्मेदार हैं। स्वरूप की आराधना में ही सावधान हैं।

अरे, जो अपने उपकारी गुणी जनों के प्रति उपेक्षा का भाव रखते हैं वे सर्वत्र उपेक्षित रहते हैं। महाभाग्य से उपकारी गुणीजनों की सेवा का सौभाग्य मिलता है। धन्य हैं जो कर्मोदय के थपेड़ों में स्वभाव को नहीं भूलते, स्वभाव को बताने वालों के प्रति सर्व समर्पित रहते हैं।

धर्मी बिना न धर्म कहीं हो, समझो अपने धर्मी को ।
प्राणों से भी प्यारा समझो, बाहर में साधर्मी को।।

मैं भोजन की बेला के समय हमेशा की तरह आज भी पिताजी की प्रतीक्षा में

द्वार पर दृष्टि लगाये बैठी थी। पिताजी को भोजन में विलंब हो जाने पर कष्ट हो जाता था, आज तो कुछ अधिक ही देर हो गई थी। इतने में ही पिताजी द्वार पर दिखाई दिए, उनके चेहरे पर थकान दिख रही थी व मस्तक पसीने से भीगा हुआ था। मैंने उन्हें आसन दिया और झुककर पाद प्रक्षालन करने लगी। उनके पाद प्रक्षालन करते समय केश कंधे से नीचे गिर गये। और मलिनता से बचाने को पिता श्री ने हाथ से उठाकर केश कंधे पर डाल दिए। बस इसी दृश्य ने हीनता की शिकार सेठानी के हृदय को झकझोर दिया।

पिताजी ने भोजन कर लिया किन्तु अचानक उन्हें परदेश जाना पड़ा। हीनता को व्यक्त करने का खुला मौका सेठानी को मिल गया उन्होंने अपना गुस्सा बालों पर उतारा। सबसे पहले मेरे बाल उतार दिए, लोहे की बेड़ी पहनाकर मुझे कमरे में बंद कर दिया और कटु वचनों का तो पार ही नहीं था। लगभग एक प्रहर तक अपने क्रोध की ज्वाला शांत करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी।

## {10}

मैं बंधन के बीच विचार करने लगी, धर्म, धर्मायतन एवं धर्मी जीवों के प्रति झुकने से पाप के उदय नहीं आते, पाप के उदय तो पूर्व की विराधना के फल से आते हैं।

अरे आत्मन्! अनादि से अपने स्वभाव की विराधना के कारण ही विराधक निमित्तों में रहना पड़ता है। मात्र मोह के कारण बाह्य संयोगों में अनुकूलता प्रतिकूलता की कल्पनाएँ होती हैं। प्रत्यक्ष में ही दुःख का मूल कारण स्वयं का अज्ञान एवं रागादि विकार है। बाह्य दृष्टि से भी देखें तो संयोगों के मिलने में भी जीव का स्वयं का पूर्वोपार्जित कर्मोदय निमित्त है। यदि वहाँ दुःख भासित होता है तो एक ही उपाय है कि उनमें अपनत्व न करें, उन्हें अपना स्वीकार नहीं करें। अपनी दृष्टि अंतर में कर लेवें।

अहो! यह कारागृह नहीं, यह तो भव कारागृह से छूटने का उपाय है। यह उपसर्ग नहीं, यह तो पुरूषार्थ बढ़ाने का एक निमित्त मात्र है। सच में आराधकों पर उपसर्ग केवल ज्ञान का निमन्त्रण लेकर आता है। जरूर इस घटना के पीछे कुछ सुखद समाचार छिपा हुआ है। अभिशापों में वरदानों के फूल खिला करते हैं।

कोई क्या कहता है जग में, अब परवाह न करना है।
कोई क्या करता है उस पर, भी निगाह नहीं रखना है।।

अपने पथ का राही बनकर, पल-पल मुझे संभलना है।
विपदाएँ तो बाहर ही हैं , अंदर अमृत का झरना है।।

अब हमें यह नहीं सोचना है कि ये हमारे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते। बस, दूसरों के खोटे व्यवहार को देखकर खोटे परिणाम न हों। हमारे विपरीत विचारों से तो संक्लेशता बढ़ेगी। समता भाव एवं तत्व विचार से ही विशुद्धता प्रसन्नता आयेगी, अखण्ड ज्ञान की भावना से ही विकल्प टूटेंगे। जीव इच्छाओं की पूर्ति में लगेगा तो थकेगा। मोह से, कषायों से जीव थकते हैं। विनयवान जीव कभी नहीं थकते। अभिमानी जीव तो कह भी नहीं सकते, सह भी नहीं सकते। अपने को सबसे अलग मानने वाले का तो सबसे अधिक पतन होता है। दूसरों के गुणों के सम्मान में प्रसन्नता आना शुरू हो जाए तो समझना कि कोमलता आना शुरू हो गयी। बाह्य व्यवस्था तो सहज अपने विकल्पों के बिना ही बनती है। अरे, जगत में हमसे कोई कुछ भी कहे तो क्या है।

कोई कितना भी उपेक्षित करे, कलंकित या अपमानित करे, प्रताड़ित करे परंतु यह नहीं भूलना है कि "समस्त परभावों से भिन्न मैं एकरूप शाश्वत ज्ञानानंदमय तत्व हूँ", कोई कुछ भी कहे, विकल्प भी आयें, तो यही भेदज्ञान करना है कि जिससे कहा जा रहा है वह मैं नहीं हूँ, मैं तो अनादि अनंत ज्ञायक प्रभु हूँ।

अरे, जगत के जीवों को देख-देख कर अपनी कषायों का पोषण करना पाप है। जिनमुद्रा व जिनवचनों का स्मरण करके विकल्पों को तोड़ना यही मोक्ष मार्ग है।

मन में महावीर प्रभु का सतत् स्मरण है, वे मुझे अवश्य उबारेंगे। जिनने सम्यक्त्व देकर भव बंधन से मुक्त किया है, वे ही बेड़ियों से भी छुड़ायेंगे। क्षण भर तो आत्मा मुक्त रूप से देहातीत भाव में निमग्न हो जाता था। ऐसी स्थिति में एक दिन बीता, रात बीती, दूसरा दिन बीत गया। पिताजी नहीं आए, तीसरा दिन भी बीत गया, तब भी पिताजी नहीं आए। मुझे तीन दिन के उपवास हो गये। मैं तीन दिन से कोठरी में बंद, बेड़ियों से जकड़ी, समय व्यतीत कर रही थी। प्रतिक्षण जिनेन्द्र भगवान का स्मरण करते हुए सम्यक्त्व का मधुर स्वाद लेते हुए जी रही थी। सोच रही थी या तो मुनिराज के दर्शन हों या समाधिमरण।

इस प्रकार विचार करते-करते तथा मुनिराज के दर्शनों की भावना भाते-भाते तीन दिन बीत गये। चौथे दिन प्रातः काल पिताजी आ गये। घर का म्हे

वातावरण कुछ सूना-सूना, बदला-बदला सा लग रहा था। पिताजी को मैं कहीं दिखाई नहीं दी इसलिए बुलाया बेटी, चंदना! किन्तु कहीं से उत्तर न पाकर पिताजी चिन्ता में पड़ गये। अरे, चंदना कहाँ गई ? अंत में उदास एक वृद्ध दासी से पूछा। बहिन, तुम्हे मालुम है कि चंदना कहाँ है ? तुम सब उदास क्यों हो ? कुछ बोलती क्यों नहीं हो ? दासी ने कोई उत्तर नहीं दिया, परन्तु पिताजी की ओर देखकर सिसकने लगी, उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। एक गहरा श्वास छोड़कर कोठरी की ओर संकेत करके चली गई।

पिताजी ने तुरंत कोठरी की खिड़की के पास जाकर देखा तो भीतर मैं दिखाई दी। बाहर से ताला लगा हुआ था। मेरा मुंडा हुआ सिर और हाथ पाँव में पड़ी बेड़ियों को देखकर पिताजी से रहा नहीं गया वे कराह उठे।

## {11}

सेठजी ने तुरंत कोठरी का द्वार खोला और बेड़ियां कटवाने के लिए स्वयं लुहार को बुलाने चले गये। वास्तव में वात्सल्य युक्त व्यक्ति प्रमादी नहीं होते।

मैं विचारने लगी, यदि मुनिराज पधारें तो मैं आहार देकर ही पारणा करूंगी। मेरी विशुद्धि प्रबल होती गई। उधर एक दासी सुबह-सुबह कोदो का भात और गर्म पानी रख गई। सच्ची भावना का सच्चा फल तो आता ही है। भावना फलित हुए बिना नहीं रहती।

देखो! इधर मैं उत्तम भावना भा रही थी कि मुनिराज पधारें तो आहार दूँ। अहो! ठीक उसी समय तीर्थंकर मुनिराज महावीर पधारे, प्रभु वीर मुनिराज को मैंने अपनी ओर आते देखा, मेरा रोम-रोम खिल गया मैं तो भूल गयी कि मैं बंधन में हूँ। पधारो, प्रभु पधारो! मेरी बेड़िया खुल गई। बंधन मुक्त मेरा लक्ष्य तो प्रभु की ओर था। बंधन था वह टूट गया, उसका भी मुझे लक्ष्य नहीं था।

मैं आनन्द पूर्वक द्वार पर आई। प्रभु की परम भक्ति पूर्वक वंदना करके पड़गाहन किया। अहो! प्रभु पधारो, पधारो। वीर प्रभु की सौम्य दृष्टि मुझ पर पड़ी मैं कृतार्थ हो गई। सब दुःख भूल गई, मानो सुखी होने की युक्ति ही मिल गई हो।

मेरे महावीर ही मुझे जानते हैं। क्षण भर के लिए प्रभु महावीर ठहरे और देखा तो दासी के रूप में तीन दिन की उपवासी चंदना आहार दान के हेतु खड़ी है। दूसरे भी अनेक अभिग्रह पूरे हो गये। एक सौ पचहत्तर दिन के उपवासी तीर्थंकर मुनिराज ने मेरे हाथ से पारणा किया।

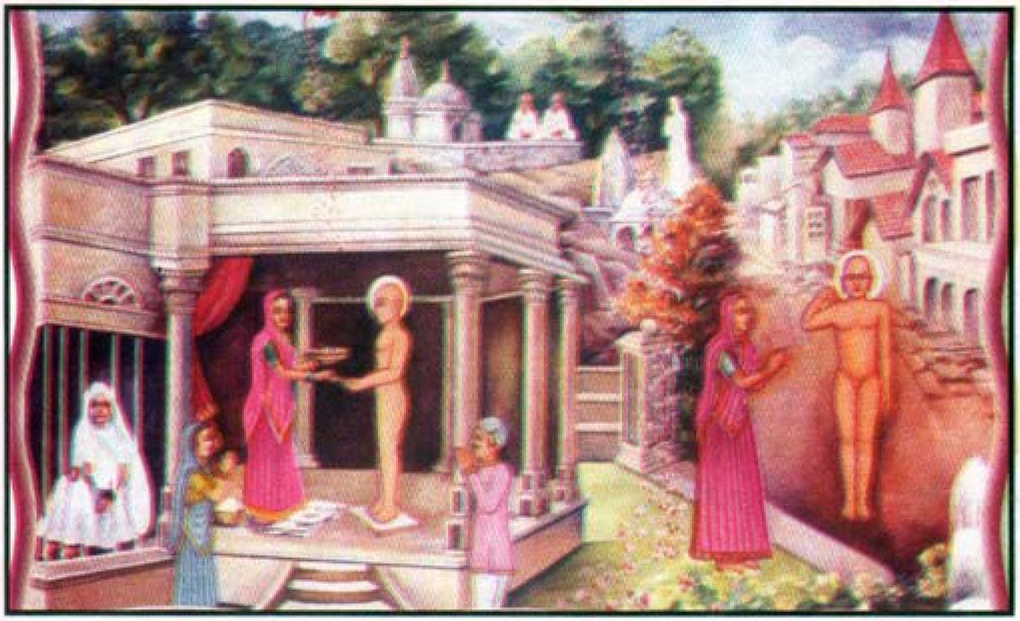

आज मुनिराज पधारें हैं, आज मुनिराज पधारे हैं ।
तीर्थंकर महावीर मुनीश्वर जग उजयारे हैं।। आज...
हे मुनिवर हृदय पधारो, मोह से हमें उबारो।
अत्रो त्रिष्ठो हे स्वामी, शुद्ध भोजन स्वीकारो।।
जिन शासन के रत्न लुटाते दर्शन थारे हैं।। आज...।।
अटपटी विधि ले डाली, कोई कन्या गुणशाली।
बाल मुंडे हों जिसके, श्रृंखला बद्ध हो देही।।
तीन दिवस उपवासी, दासी, मुनि पड़गाहे हैं। आज...।।
कोदों के दाने खाने, मिले हों जिसे उदय में ।।
नवधा भक्ति हृदय में, आंखों में अश्रु भरे हैं।
धन्य धन्य जिनधर्म, संत ही तारणहारे हैं ।। आज...।
खड़े नर नारी सारे, विधि न मिले कहीं रे।
नित्य मुनि आते जाते, किंतु आहार न होते।।
राजा, रानी दुःखी सभी कोई समझ न पाये है। आज...।।
दासी चंदनबाला जी, सुनी मुनि नाथ पधारे ।।
न देखी बेड़ी बंधन, दौड़ी मुनिराज हमारे।
हे स्वामी जी आओ पधारो द्वार हमारे हैं ।। आज...

विधि तो सारी पायी , अश्रु की कमी दिखायी ।
लौटने लगे मुनीश्वर, रो पड़ी दासी तब ही।।
बात बन गई, विधि मिल गई, हुये आहारे हैं । आज...।।
एक सो पचहत्तर दिन, बाद आहार हुये हैं।।
पांच आश्चर्य हुये हैं, रत्न ढेरों बरसे हैं।
धन्य सती निर्दोषमती, जय जय उच्चारे हैं।। आज...
चंदना तुझे वंदना, नगर सारा उमड़ाया।
अपमानित दलित कुमारी, प्रभु निर्दोष ठिराया।।
क्षमा करो, सब कहें चंदना, समझ न पाये है। आज...।।
बहिन मृगावती आयी, रानी कौशांबी नृप की।।
चंदना बहिन हमारी, किसने ये दशा बनायी?
कोई दोषी दिखे न उसको, मंत्र उचारे है।। आज...
सेठानी भी पछताई, पापनी मै हूँ भाई।
बोली माँ तूने ही तो, मिला दी विधि ये सारी।।
फिर भी क्षमा करो हे बेटी, नमन हमारे हैं। आज...।।
मृगावती बोली बहिना, चलो अब संग रहेंगे ।।
बोली अब दीक्षा लेंगे, प्रभु के पंथ चलेंगे।
जो आहार के आये बहाने, हमें जगाने हैं ।। आज...

ज्यों ही मैंने प्रभु के हाथ में कोदों के भात का प्रथम ग्रास रखा कि दाता और पात्र दोनों के दैवीय पुण्य प्रताप से उसका उत्तम खीर रूप परिणमन हो गया। उत्तम खीर से विधि पूर्वक प्रभु का पारणा होने से चारों ओर पृथ्वी और आकाश में आनंद मंगल छा गया। बस, बाद में दीदी मैंने आपको वहाँ देखा।

दीदी मैंने तुम्हारे आग्रह के कारण अपने मनोगत भावों को व्यक्त तो कर दिया है लेकिन एक विनय है कि इन घटनाओं में किसी को दण्डित व प्रताड़ित न किया जाये चाहे विद्याधर हो, चाहे भील हो, चाहे सेठानी हो। क्रोध शत्रु का नाश नहीं करता, नये शत्रु पैदा करता है। विनय एवं क्षमा से तो बहुत पुराना बैरी भी बैर छोड़ देता है। शत्रुता का ही नाश हो जाता है। पूर्व जन्म के संस्कार से इस

लोक में भी जीवों के स्नेह-बैर, राग-द्वेष आदि समस्त विकारी भाव निरन्तर यथावत चले आते हैं। यही समझकर बुद्धिमान प्राणी शत्रु के प्रति भी विषाद नहीं करते।

## {12}

मृगावती- हमारे तो भाग्य खुल गये चंदना! हम भरसक प्रयत्न करके भी जिसे न पा सके, वीर प्रभु के चरणों में हम अपनी छोटी बहिन चंदना को सहजता से पा गये।

चंदना - बहिन! जो हमने जगत के जीवों के अभिप्राय की विचित्रता देखी है उसे देखकर मन फट गया है। अब हमने अपने आप को प्रभु के चरणों में सदा-सदा के लिए समर्पित कर दिया है। अब तो हम अपने आप को जगत के जीवों के कर्तत्व एवं अहंकार के परिणामों के पोषण में निमित्त नहीं बनने देंगे। बस हमारे लिए मात्र वीर प्रभु ही प्राणाधार हैं, हमारे स्वामी हैं,हमारे नाथ हैं, हमारे चिंतामणि हैं, हमारे कल्पवृक्ष हैं, हमारे धनी हैं।

मृगावती- अपने से विमुख होकर जो परिणति चल रही है क्या वही दुःख है ?

चंदना - हाँ! जिसे संसार दुःख रूप लगता है, उसे हर इच्छा दुःख रूप लगती है। पर्याय में दुःख है ऐसा स्वीकार है तो वह वहाँ से हटेगा। स्वभाव में सुख है ऐसा जिसे स्वीकार है तो वह वहां झुकेगा।

मृगावती - सचमुच, बहिन चंदना! धन्य है तुम्हारे जैसे आत्मअनुभवी संपन्न जीव जो हर परिस्थिति में स्वभाव के लक्ष्य से हर क्षण आनंदित रहते हैं। संयोग एवं संयोगी भावों के प्रति राग-द्वेष भाव नहीं रखते, कर्मो को जो ठाट दिखाना है सो दिखाये।

चंदना - सच है, दीदी! कभी भी दूसरों की चिंता नहीं करेंगे, दूसरों से लाभ नहीं मानेंगे, दूसरों से आशा नहीं रखेंगे, दूसरों को दोष भी नहीं देंगे। अपने निर्दोष स्वरूप को देखेंगे।

मृगावती - सच है बहिन! पर के सहारे, पर को अपने अनुकूल बनाकर कितने दिन सुखी रह पायेंगे। वास्तव में वीरता तो कषायों अनुकूल प्रर्वतन कराने में नहीं, समता भाव से सहन करने में है, बहिन अब तो क्षमा से अपने

जीवन को सजाना और आराधना से सुशोभित करना।

चंदना - सच है बहिन, नहीं सोचना है दूसरे हमारे बारे में क्या सोचते हैं, क्या समझते हैं, क्या जानते हैं ? सोचना यही है कि हम अपने आप को क्या मानते हैं, क्या जानते हैं, क्या समझते हैं ?

मृगावती- इसके लिए तो बहिन, जिनवचनों का आदर करना सीखें और अपने वचनों की सम्हाल करना सीखें। वास्तव में ज्ञानी जनों के वचन ही सत्य वचन हैं। जो हितकारी, उपकारी एवं विश्वास के लायक हैं। जिनके विश्वास से ही दोष मिटते हैं एवं स्वयं की प्रभुता का आदर आता है, प्रभुता प्रगट होती है।

चंदना- बहिन! ऐसे ही धर्मी जीव तो धन्य हैं जिन्हें पर के दोष दिखाई नहीं देते।

मृगावती- सचमुच, बहिन! अपना दोष देखने में बड़ा आनंद है और दूसरों के दोष देखना बहुत बुरा है, दोषों का अभाव कर स्वभाव का आनंद तो अलौकिक है।

चंदना - सच है बहिन! हमें तो किसी ने देखा भी नहीं, हम दुःखी क्यों होवें ? अपनी अवज्ञा में पाप का उदय समझकर समता रखेंगे, अपने द्वारा किसी की अवज्ञा हो तो अपना दोष समझकर दूर करेंगे। अरे, जो अपने दोष नहीं देखता उसे दूसरों के दोष दिखते रहते हैं। दूसरों के दोष देखने से क्रोध बढ़ता है। अपने दोष देखने से क्रोध घटता है और निर्दोष स्वभाव को देखने से क्रोध मिटता है।

मृगावती - बहिन! तुम इतने प्रतिकूल संयोंगो के बीच भी इतनी अप्रभावी रहीं ।

चंदना - बहिन! हम जितना दोष निमित्त को देंगे, उतना ही दुख हमें होगा। अनेक अनुकूलताओं के बीच एक प्रतिकूलता भी हमें सहन नहीं होती। छोटे-छोटे प्रसंगो में खेद खिन्न हो जाते हैं। कल जीवन में अचानक कोई बड़ी घटना घट जाए या कदाचित सारा जगत हमारे विरूद्ध खड़ा हो जाए तो क्या सबको दोषी ठहराकर, ईर्ष्या-द्वेष की कड़वाहट से हृदय को भर देंगे ? जिस समय जो प्रसंग बनेगा उसको सहज भाव से स्वीकार कर आनंदित रहेंगे। दूसरे लोग जैसा करेंगे, उसका फल वे ही भोगेंगे लेकिन हमारा आदर-अनादर यह हमारे कर्म का फल है। जो भी बनाव बनता है न्यायपूर्वक ही बनता है, क्योंकि कर्म का फल अपने बाँधे हुए परिणाम के अनुसार मिलता है। इन्ही परिस्थितियों में धर्मी जीवों

को स्वभाव का बल एवं तत्व विचार के बल से निमित्त पर दोष दृष्टि नहीं बनती इसलिए संक्लेशता एवं कषायों से बचे रहते हैं।

मृगावती – हे चंदना! तूने संसार की विचित्रताओं को देखते हुए बहुत कष्ट सहे हैं। अब पिता श्री और मेरी यही भावना है कि तुम विवाह करके ग्रहस्थ धर्म अंगीकार करो।

चंदना – शादी की बात जब आयी बोली बहिन से नम्र होकर –
कैसे करूं विवाह बताओ संयमशील धरम खोकर।
उपसर्ग बन पहाड़ भी जो मुझसे टकरायेंगे,
प्रभु के आशीष से सब चूर चूर हो जायेगें।

हमारी बहिन होकर भी तुम रागवश ऐसे वचन बोल रही हो। हे बहिन! जिसे जगत माँग का सिंदूर कहता है वह भव भव के कष्टों की लाली है और जिसे जगत मंगल सूत्र कहता है वह संसार बंधन की बेड़ी है। जिसे जगत भोग कहता है वह रोग है। हे बहिन! विवाह तो बहुत दूर मेरा मन तो उसकी चर्चा से भी कंपायमान हो जाता है। अब तो मैने यह निर्णय कर लिया है कि जब वीर कुमार को केवल ज्ञान होगा तब सर्वप्रथम अर्जिका व्रत अंगीकार करके आत्म कल्याण करूंगी।

मृगावती – हे बहिन! तुम कुछ दिन माता पिता के साथ रह लो, उन्होंने तेरे वियोग में भारी कष्ट उठाये हैं।

चंदना – सब झूठे रिश्ते नाते जिन शासन ही है साथी,
सब विषय वासना झूठी तृप्ति स्वभाव से आती।

हे बहिन! मैंने अनंत भव में अनंतो माता-पिता बनाये। ऐसी कौन सी माँ है जिसके गर्भ में, मैं नहीं जन्मी ? मात्र रोने और रूलाने का ही धंधा किया। जिसे जगत घर कहता है वह मोहियों के रहने का, एक मिट्टी का घरोंदा है, जिसमें जीव मिट्टी की ममता को लिए जन्मता है और मिट्टी की ममता लेकर मिट्टी में ही मर जाता है। अब, मुझे इस मिट्टी के घर में वापिस नहीं जाना है।

मृगावती – जब तक वीर प्रभु का शासन रहेगा, तब तक तेरा नाम इतिहास

में अमर रहेगा। संघर्ष और पुरूषार्थ की तू एक अपूर्व मिशाल है। भविष्य में सभी नारियाँ तुम्हारे आदर्श को ग्रहण करेंगी। वास्तव में जो प्राणी मनुष्य पर्याय प्राप्त करके संयम धारण नहीं करता, वह रत्नो की भगोनी में चंदन की कलछी से कढ़ी बनाता है। लेकिन बहिन इतने परिवार जनों का स्नेह वैराग्य की राह तुझे कैसे जाने देगा ?

चंदना - व्यर्थ के मोह में त्रिकाल निरावरण तत्व पर पर्याय दृष्टि का आवरण डालने से क्या फायदा ? स्वतंत्र प्रभु को बंधा हुआ देखने से क्या फायदा ? यह दृष्टि का भ्रम हमें हमारे ही अंदर भरे हुए सुख को प्राप्त नहीं होने देगा।

अरे! शरीर, भोगों के लिए तो स्वरूप की अनंतबार उपेक्षा की है। एक बार स्वरूप के आश्रय पूर्वक यदि इनकी उपेक्षा कर देवें तो स्वयं सुख का सागर लहराने लगे, पर की उलझनों में अपने को भूले हुए चिरकाल बीत चुका है। आज तो मौका है भूल जावे सबको स्वयं के लिए, जगत कैसा है ? यह नहीं देखना है अब तो मैं कैसा हूं, यह अवलोकन का अवसर है। पर लक्ष्य से कोई भी न तो आज तक सुखी हुआ है, न है, न होगा।

नश्वर तन धन संपदा नश्वर है सम्मान।<br>
शाश्वत है शुद्धातम, नश्वर है जड़ प्राण।।

मृगावती - दीक्षा के मार्ग में तो कैसे- कैसे दुःख सहन करने पड़ेंगे ।

चंदना - बहिन! निज ज्ञायक तत्व को जाने बिना चार गतियों में न चाहते हुए भी दुःख का ही वेदन किया है। अब तो एक ही भावना है कि मेरा अब से अनंत काल स्वरूप की आराधना में व्यतीत होवे। पर से आदर एवं अपनापन पाने की तीव्र इच्छा में अनंत भव यूँ ही गवाँ दिये। सिर्फ आकुलता ही मिली और अब भी दुर्लभ अवसर यूँ ही गवा दें ?

मृगावती - बहिन! घर में ही रहकर आराधना करने का हमारा निवेदन स्वीकार करो।

चंदना - संसार गहन वन में प्रभु , कोई न सहारा पाया।<br>
ममता का बंधन कैसा , सुलझाने में उलझाया।।

घर परिवार संसार तो खोने के लिए हैं, पाने के लिए नहीं। अब तो बहिन समस्त प्रकार के विकल्पों को इंद्रजाल मानकर परमार्थ की आराधना में सावधान रहेंगे। संयोगों से कुछ भी अपेक्षा न रखते हुए निज में संतुष्ट रहने का अवसर आया है। अपना सर्वस्व अपने में ही सदैव सहजपने ही प्राप्त है।

मृगावती - सच है बहिन, जिसको आत्मशांति प्रकट करनी है अथवा प्रकट करने की योग्यता है उस जीव को मोहासक्ति के परिणाम में घबराहट होती है। तब उससे छूटने का सहज ही प्रयत्न हुए बिना नहीं रहता। स्वयं अपने दोष का अवलोकन करता है, कोई स्वयं का दोष दिखाये तो उसके प्रति दुःख तो नहीं लगता किन्तु दोष दिखाने वाले के प्रति उपकार भाव प्रगट करता है। दोष देखने में सरलता, नम्रता, मध्यस्थता उत्पन्न होती है। इस प्रकार अपने दोषों का मध्यस्थता पूर्वक अवलोकन करने से स्वच्छंदता का नाश होता है।

चंदना - सच है बहिन, जिस जीव को इन्द्रिय सुख दुःख नजर आते हैं, उनकी इच्छा का रस मंद पड़ना शुरू होता है, पर में सुख बुद्धि का विपरीत अभिप्राय ढीला पड़ता है। तीव्र मुमुक्षुता की भूमिका में पैर रखने वाले ऐसे जीव को, स्वरूप को बताने वाले निमित्तों में परम बहुमान हुए बिना नहीं रहता। जहां संसार के अभाव जैसा बड़ा कार्य होता है, वहां जुड़ान भी अतिशय भक्ति से बड़ा होता है उस समय दर्शन मोह अत्यंत घट जाता है।

मृगावती - सच है बहिन, जब ज्ञानी जीव की पहचान होती है तब जीव को उनके प्रति कोई अपूर्व स्नेह आता है। उन गुणीजन गुरूओं के वियोग में एक घड़ी भी जीना उसे विडंबना रूप लगता है, फिर उसे दूसरी जगह रस नहीं पड़ता, विरह की वेदना नीरस कर देती है। उसका लक्ष्य वहीं रहा करता है, अन्य पदार्थों का संयोग मृत्यु तुल्य लगता है।

मृगावती - हे बहिन! क्या अद्भुत बात है कि हम जगत से बिल्कुल निरपेक्ष व स्वाधीन हैं अब इसके निर्णय की विधि बतलाइये ?

चन्दना - हे आत्म रसिक! ज्ञान खुद ज्ञेयों से निरपेक्ष परिणमित होता है उसे ही ज्ञेयों की ओर से ज्ञेयाकार कहा जाता है परन्तु वास्तव में वह ज्ञानाकार ही है।

ज्ञान प्रति समय चलता रहता है, इससे पता चलता है कि यह ज्ञान भाव ही मेरा स्वरूप है, मैं मात्र जाननहार ही हूँ। ज्ञान ज्ञायक में से प्रगट हो रहा है और ज्ञान में ज्ञायक ही जानने में आ रहा है, इस प्रकार अपनी महिमा सहित निर्णय में पर द्रव्य व अपनी पर्यायों पर लक्ष्य ही नहीं जाता। ज्ञान में वह परिणमन दिखता है, परन्तु उसका लक्ष्य ज्ञान पर आ गया है, कि ज्ञान का ही परिणमन हो रहा है। ज्ञायक में से ज्ञान आ रहा है, और ज्ञान में ज्ञायक ही जानने में आ रहा है, इस प्रकार निर्णय की दृढ़ता में आगे बढ़ा कि यही मैं हूँ, यही मैं हूँ , वहाँ निर्विकल्प स्वसंवेदन हो जाता है। अनुभूति हो जाती है।

## {13}

राजगृही में चिंतातुर बहिन चेलना, वैशाली में बहिन प्रियकारिणी त्रिशला तथा चंदना के पिताजी राजा चेटक और प्रजाजन सब को चंदना के मिल जाने की एवं उसके हाथ से वीर मुनिराज के पारणा के समाचार ने सबको हर्ष विभोर कर दिया एवं सभी परिवारजन चंदना से मिलने तुरंत ही आ पहुंचे।

अब इधर चंदना अपनी बहिन मृगावती के साथ कौशाम्बी के राजमहल में रहती हैं और वैराग्यपूर्ण जीवन बिताती हैं। स्वानुभूति में अधिकाधिक परिणाम लगाती हैं। दिन रात महावीर के विचारों में तल्लीन रहकर समवसरण के सपने देखती हैं कि कब वर्धमान प्रभु को केवलज्ञान हो और कब मैं प्रभु के समवसरण में जाकर आर्यिका बनूँ? प्रतिदिन प्रभु को केवलज्ञान होने के समय की प्रतीक्षा करती हैं। वीर प्रभु राजगृही की ओर सम्मेद शिखर सिद्धक्षेत्र के आसपास विचर रहे हैं। वहाँ से कोई भी यात्री आता तो उन्हें बुलाकर, आतुरता से समाचार पूछती है कि तुमने प्रभु को देखा ? प्रभु को केवलज्ञान हुआ वे इस समय कहाँ विराजते हैं ? क्या करते हैं ?

एक यात्री ने कहा बहिन! मैं वीर प्रभु के दर्शन करके आ रहा हूँ। जाम्भिक ग्राम में ऋजुवालिका नदी के तट पर प्रभु ध्यान में लीन खड़े थे और अब तो केवलज्ञान की तैयारी लगती है, क्योंकि प्रभु अति उग्ररूप से ध्यान में एकाग्र हैं ऐसा लगता था । किन्तु बहिन! क्या प्रभु की केवलज्ञान होने की बात कहीं छिपी

रहेगी ?... अरे! केवलज्ञान होते ही तीनों लोक में उसके समाचार फैल जाएँगे और आनंद ही आनंद छा जाएगा ... आकाश से देवों के समूह धरती पर उतरेंगे... अब तो हम शीघ्र ही वह धन्य अवसर देखेंगे ... और तीर्थंकर रूप में प्रभु की दिव्यध्वनि सुनकर धन्य बनेंगे।

इधर मोह से युद्ध करने के लिए वीर योद्धा तैयार खड़े हैं वीर राजा का महावीरपना आज सचमुच जागृत हो उठा। अरे ! देखो-देखो प्रभु तो शुद्धोपयोग रूप चक्र की धार से मोह का नाश करने लगे हैं, क्षपकश्रेणी में आगे बढ़ते-बढ़ते नौंवे-दशवें गुण स्थान में तो क्षण मात्र में पहुँच गये। प्रभु अब सर्वथा वीतरागी हो गये और सूर्यास्त से पूर्व तो वीरप्रभु को अंतर में जो कभी अस्त न हो ऐसा केवल ज्ञान का सूर्य जगमगा उठा, प्रभु महावीर! सर्वज्ञ हुये, अरिहंत हुये! परमात्मा हुये, णमो अरिहंताणं....

प्रभु के केवल ज्ञान महोत्सव की पूजा करने स्वर्ग से इंद्रादिक देव पृथ्वी पर आ पहुँचे।

परमात्मा के चरणों में झुके हुये इंद्र संकेत कर रहे थे कि सारा पुण्य वीतरागता पर न्यौछावर करने योग्य है और वे परमात्मा कह रहे थे कि नहीं-नहीं स्वरूप में ही झुकने योग्य है।

अज्ञानी को संपदाएँ छोड़ जाती हैं, ज्ञानी सम्पदाओं को छोड़ जाते हैं। स्वयंमेव तृप्ति में पुण्य की विभूति कचड़े के ढेर की तरह पड़ी रह जाती है।

अहा! जिस कल्याणकारी क्षण की प्रतीक्षा सती चंदनबाला कर रही थी, आज वह क्षण आ पहुँचा। वीर प्रभु के दर्शन एवं वाणी श्रवण करके विरागी चंदनबाला ने भी अनेक साधर्मी बहिनों के साथ आर्यिकाव्रत ग्रहण कर लिया, वे समस्त आर्यिकासंघ की प्रधान आर्यिका होकर आत्मकल्याण में तत्पर हो गयी।

निकल संकटो से पहुँची, प्रभु महावीर के पास।
निजस्वभाव साधन करने का मन में था अपूर्व उल्लास।।
निजस्वरूप विश्रांतमयी इच्छा निरोध तपधारा था।
रत्नत्रय की पावन गरिमामय, निज रूप संभारा था।।

मग्न हुई निज में ही ऐसी, मैं स्त्री हूँ भूल गई ।
छूटी देह समाधि सहित, अच्युत स्वर्ग में देव हुई ।।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि राजन! जो महासती चन्दनबाला के नाना रसों से आश्चर्य उत्पन्न करने वाले इस चारित्र को भाव से सुनता है, वह जीव निज पद की ओर बढ़ता है, पर से दृष्टि हटती है, विकारों की घटायें फटती हैं, कर्मो के बंधन कटते हैं । धर्मी जीवों को साता-आसाता के उदय से होने वाले इष्ट-अनिष्ट कार्यो को देखकर मंद-तीव्र दुःख की जो परिस्थिति बनती है उसे ज्ञान का ज्ञेय बनाकर उसका स्मरण नहीं करते और निज ज्ञायक भाव का विस्मरण नहीं करते। करूणा सिंधु, आनंद का नाथ, चैतन्य परमात्मा अपनी सहज दृष्टि में सदा जयवंत रहता है। परमार्थ स्वरूप की दृष्टि होते ही निमित्ताधीन दृष्टि स्वतः मिट जाती है, और स्वाधीन परम अमृत का परमभाव से आस्वाद आता है, अपूर्व निराकुलता मिलती है एवं सब आकुलता मिटती है। यही पुरूषार्थी वीरों की साधना है।

- स्वार्थ व अभिमान का त्याग होने पर ही व्यक्तित्व का विकास होता है।
- बदला लेने का भाव आये तो तत्व विचार पूर्वक दृष्टि बदलकर देखो।
- विपरीत विचार ही हमारा सबसे बड़ा शत्रु है।
- वर्तमान के दुख का कारण वर्तमान का मोह है।
- जो अपनी याद दिलावे वे ही अपने है।
- यदि हम तत्व ज्ञान पूर्वक जगत से उदास नहीं होगें तों निराश होना पड़ेगा।
- सम्पत्ति नहीं समता बढ़ाओ।
- पर को अपना मानने वाले जीवों को ही पर द्रव्यों की जरूरत लगती है।
- कभी न भूलें... अपना स्वरूप। अपना कर्त्तव्य। अपनी मर्यादा।
- संयोगो का स्मरण करने से दूख बढ़ेगा, भगवान का स्मरण करने से दुख घटेगा, स्वरूप का स्मरण करने से दुख मिटेगा।

चैतन्य मेरा देव है उसी को मैं, देखता हूं। दूसरा कुछ मुझे दिखता ही नहीं है। ऐसा द्रव्य पर जोर आये, द्रव्य की अधिकता रहे तो सब निर्मल होता जाता है। स्वयं अपने मे गया एकत्व बुद्धि टूट गई, वहां सब रस ढीले हो गये। स्वरूप का रस प्रगट होने पर अन्य रस में अनंत फीकापन आ गया। न्यारा, सबसे न्यारा हो जाने से संसार का रस घट कर अनंतवां भाग रह गया। सारी दशा पलट गई।

## जैनशासन का गौरव

आत्मसाधिका

# महासती अंजना

## मंगलाचरण

मंगलमय मंगलकरण, आत्मस्वरूप महान।
आत्मसाधना से हुए, अर्हन्त सिद्ध भगवान।।
आत्मसाधिका अंजना, परमेष्ठी उर धार ।
शील शिरोमणि हो गई, आगम कहे उचार।।
कर्म उदय प्रतिकूलता, बनकर आयी पहार ।
डिगी न मुक्ति-पंथ से, धन्य-धन्य अवतार।।

अंजना.......अंजना.......
अरे, कौन अंजना ?
श्री मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर युग की,
श्रेष्ठ आराधिका अंजना.........
तद्भव मोक्षगामी, चरमशरीरी
हनुमान की जन्मदात्री माँ अंजना.........
उपसर्ग विजेत्री अंजना, समताधारिणी अंजना.........
मुनि भगवन्तों की पथानुगामिनी अंजना.........
भावी भगवान अंजना.........
हाँ, अंजना सती की कथा पढ़कर, जागता है आत्मबल
कर्मों से लड़ने का प्रकट होता है संबल,
विराधना भूल से भी न हो
खिल जाता ऐसा सम्यग्ज्ञान का कमल।

फाल्गुन माह के अष्टान्हिका महापर्व में परिणामों की निर्मलता के लिए अकृत्रिम चैत्यालयों की वंदना करने देव गण नंदीश्वर द्वीप जा रहे हैं।

धर्मी जीव स्वभाव की महिमा बढ़ाने के लिये एवं विषय-कषायों के

निमित्तों से बचने के लिए अति उल्लास पूर्वक धर्म, धर्मायतनों एवं धर्मी जीवों के निकट जाने की भावना भाते हैं।

इसी पावन अवसर पर महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अंजना सहित भावों की कलुषता मिटाने के हेतु, जिनबिंबों के दर्शन-पूजन के अर्थ, मन में अति उल्लास और भक्तिभाव से वंदना हेतु कैलाश पर्वत पर पहुँचे।

राजा प्रह्लाद भी अति प्रीति एवं भक्तिभाव से अपने पुत्र पवनंजय के साथ वहाँ आये हुए हैं।

वे दर्शन-पूजन से निवृत्त हो गिरिराज पर ही घूम रहे थे कि राजा महेन्द्र की दृष्टि उन पर पड़ी।

राजा महेन्द्र ने अभिवादन करने के बाद राजा प्रहलाद से कहा - हे राजन् ! अपनी पुत्री अंजना का विवाह आपके पुत्र चिरंजीव पवनकुमार के साथ हो जाये तो कितना सुखद रहेगा ?

सुनकर राजा प्रहलाद बोले - हे राजन्! यह तो मेरे पुत्र का सौभाग्य होगा, मेरी ओर से इस संबंध को आप पक्का ही समझिए।

फिर तीन दिन बाद उसी मानसरोवर के तट पर ही विवाह होना भी सुनिश्चित हो गया।

कुमार पवन मित्र प्रहस्त से बोले- हे मित्र ! तीन दिन का विरह मुझसे सहन नहीं हो रहा है। रात होते ही दोनों मित्र गुप्त रूप से विमान द्वारा अंजना के महल में जा पहुँचे।

जिस प्रकार विनयशील जिज्ञासु जीवों की धर्मानुरागी गुरूजनों के निकट उनकी वात्सल्य भरी दृष्टि की एक झलक से ही समस्त जिज्ञासायें शांत हो जाती हैं, उसी प्रकार अंजना की मात्र एक झलक देखने से ही कुमार पवन की तृष्णा तृप्ति में परिवर्तित हो गई।

तभी अंजना की सखी बसंत अंजना से कहने लगी - कितना अच्छा नाम है पवन ! सारे जगत से साफ बचकर निकल जायेंगे, वास्तव में वे भव्य आत्मा हैं।

अंजना के झुके हुए नयन देखकर बसंत पुन: बोली - अभी तो नाम मात्र के उल्लेख से लज्जावंत हो रही हो, पा जाओगी तो न जाने क्या होगा ?

तभी सखी मिश्रकेशी कहने लगी, तुम्हारा संबंध पवनकुमार से हुआ सो तो ठीक परन्तु विद्युत्प्रभ से हुआ होता तो बात ही कुछ और होती।

मर्यादित प्रसन्नता में तल्लीन अंजना ने सखी मिश्रकेशी के अमर्यादित वचनों पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न की

यह देख सुनकर पवन सोचने लगे कि अंजना ने इन अमर्यादित वचनों का निषेध क्यों नहीं किया ?

जिस प्रकार जीव श्री गुरूओं के अंतरंग वात्सल्य को नहीं परख पाते, उसी प्रकार कुमार भी अंजना के मन के समर्पण एवं उनकी गंभीरता को नहीं परख सके और उनके अहं की भूमि डंवाडोल हो गई।

जैसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति मन में भी कोई विराधना का भाव उत्पन्न हो जाने पर सम्यग्दर्शन दूर से ही विदा हो जाता है, वैसे ही कुमार के मन से अंजना के प्रति अनुराग विदा हो गया।

वास्तव में जीव को मान एवं लोभ की पूर्ति में सुख बुद्धि पूर्वक चलने वाले विकल्प ही वर्तमान में दुख एवं भविष्य में दुर्गति के कारण हैं, परंतु जीव परद्रव्यों एवं पूर्व कर्मोदय आदि को ही दुख का कारण मानता है।

मित्र प्रहस्त गहराई से पवन की मुख मुद्रा का आंकलन कर रहे हैं, देख रहे हैं कि पूर्व सी सरलता अब पवनंजय में नहीं है।

वहाँ से तुरंत ही वापस आकर कुमार आदेश के स्वर में बोले -

प्रहस्त ! मैं मानसरोवर तट पर कल का सूर्योदय नहीं देखूँगा।

कुमार पवन के संगी-साथी इस अप्रत्याशित घोषणा से अचंभित हो गये, यह अकारण प्रस्थान की आज्ञा क्यों ?

अंजना का निवास स्थल निकट ही होने से कुमार पवन के प्रस्थान का कोलाहल उनके कानों में भी गूँजा।

अपार विस्मय से अंजना के कान कोलाहल की ओर टिक गये वे विचारने लगी, मैंने तो उनके प्रति कोई ऐसा अपराध नहीं किया परन्तु मिश्रकेशी ने उनके प्रति जो वचन कहे, कहीं कुमार को किसी ने यह खबर तो नहीं देदी। धिक्कार है इसे जो इसने मेरे प्राणवल्लभ के प्रति ऐसी कुभाषा कहीं। अब यदि मेरे पिता कुमार को वापिस लाते हैं तो ही अच्छा है।

उधर महाराज महेन्द्र, पिता प्रहलाद तथा मित्र प्रहस्त सभी कुमार के पास पहुँचकर यही सोचकर समझाने लगे कि जिस प्रकार जीव को विश्व की कोई शक्ति समझाने में समर्थ नहीं, उसकी भली होनहार ही उसे हित के मार्ग में ला सकती है, उसी प्रकार कुमार माने तो स्वयं से ही मानेंगे।

पिता एवं पितृतुल्य राजा महेन्द्र के वात्सल्य युक्त वचनों से कुमार नम्रीभूत हो गये। सज्जन पुरूष विपरीत विचारों को निर्णय के लायक नहीं बनाते, अत: गुरूजनों की गुरूता का उल्लंघन करने में स्वयं को असमर्थ समझने से प्रस्थान निरस्त कर दिया।

पर मन ही मन दृढ़ निश्चय किया मैं इसे परिणय कर तज दूंगा, ताकि दु:ख से इसका जीवन व्यतीत हो और अन्य किसी का भी इसे संयोग न प्राप्त हो।

मानसरोवर के तट पर परिणय सम्पन्न हुआ। वहाँ परम उत्सव कर एक माह रहे। फिर दोनों राजपरिवार दल-बल सहित अपने-अपने नगरों को प्रस्थान कर गये।

## {2}

आदित्यपुरी नगरी में प्रवेश करने पर प्रजा ने उनका भावभीना स्वागत किया, तत्पश्चात् युवराज्ञी अंजना को रत्नकूट प्रासाद में अति उत्साहपूर्वक पहुँचाया गया।

मन में उमंग लिए स्वामी से मिलने अंजना

प्रथम ही दिन.... कुमार आने वाले हैं, लेकिन रात्रि के चारों प्रहर बीत जाते हैं, कुमार नहीं आये, नहीं आये। अब नहीं आयेंगे - कुमार का ऐसा निर्णय अगले ही दिन अंजना के पास आ गया।

ऐसे निर्णय को सुन अंजना सुन्दरी विषाद को प्राप्त हुई। कुमार के असंभाषण से और कृपादृष्टि से न देखने से दुखी हो रात्रि में निद्रा भी नहीं लेती। निरन्तर उनके नेत्रों से अश्रुपात होता रहता था। शरीर मलिन हो गया था। अत्यन्त दुर्बल हो गयी थी स्वयं की ऐसी दशा होने पर भी।

सर्व जगत के जीवों के प्रति वात्सल्य रखते हुए अंश मात्र भी किसी के भी गुण देखकर उल्लास पूर्वक रोमांचित होती, दुखी जीवों के दुख देखकर अनुकंपित होती एवं सारे राज्य वैभव के प्रति अत्यंत निष्पृह बुद्धि रखती हुई,

उदय में आये हुए कर्मों को भोगते हुए नये कर्म न बँधें इसके लिए सचेत रहती थी, अतः शुभाशुभ कर्म के उदय के समय हर्ष-शोक में न पड़ते हुए भोगने से ही छुटकारा समझकर समभाव बढ़ाती।

साधिका अंजना हमेशा अपने दोष खोजती, पूर्व में हुए जिनशासन के प्रति विराधक परिणामों को धिक्कारती, वर्तमान में जिनशासन के मिलने में अति सौभाग्य समझती।

वसंत - कुमार पवन के बिना कैसा सूनापन दिखता है ?

अंजना - बहिन! भले ही वे यहाँ उपस्थित नहीं है लेकिन हृदय में तो उनका ही वास है।

अरे! जिनकी निकटता में हम अपने स्वरूप को भूलते हैं, ऐसे पाँचइन्द्रिय के विषय, विषय के आयतन एवं विषयानुरागी जीवों के प्रति आकर्षण एवं समर्पण ही दुर्भाग्य है और जिनकी निकटता में हमें अपनी प्रभुता का स्मरण होता है - ऐसे धर्म, धर्मायतन, धर्मी जीवों के प्रति संपूर्ण समर्पण में ही अपना सौभाग्य है।

इन दिनों अंजना मोहियों की ममता से सावधान रहती हुई निर्भय सिंहनी की भाँति अकेले ही रहकर अपने में तृप्त, भगवन्तों को भक्ति से निहारती एवं स्वरूप में तृप्ति पाकर जिनवचनों में अति आदरपूर्वक अपना चित्त लगाती।

धन्य है साधिका अंजना! जिन्होंने अपने में अपनापन स्थापित करके अपने को भरा-पूरा अनुभव कर लिया है और अंतर में विश्व के समस्त जीवों को भी जो निरपेक्ष वात्सल्य देने की शक्ति प्रकट हुई है, उससे सारा विश्व भी अपने को भरा-पूरा अनुभव कर सकता है। अरे! धिक्कार है स्वार्थी जगत-जनों का संग, जहाँ सब जीव निरपेक्ष वात्सल्य के बिना अकेलेपन की वेदना में जलते रहते हैं।

चेहरे पर विराग, क्रियाकलापों में सजग, हृदय में प्रभु के प्रति अनुराग, इन रंगों ने कैसी अद्‌भुत छटा बिखेरी है।

साधिका अंजना को कषाय करने का अभिप्राय एवं विकल्पों का पक्ष चले जाने से किसी भी बात को बार-बार कहने का आग्रह नहीं, बात को मात्र एक बार धीमे से कहती है और सुनने वाला भी धन्यता का अनुभव करता है। जब

विकल्पों में से ही अपनेपन का पक्ष चला गया तो विकल्पों के अनुसार परिणमन में अहंकार कहाँ ?और विकल्पों के प्रतिकूल परिणमन में दीनता कहाँ ?

इच्छा ही दुख है। सुख इच्छा पूर्ति में नहीं, इच्छाओं को मिटाने में है। हमारे धर्म के फल में मान और लोभ की पूर्ति होती रहे, ऐसा न हो, बल्कि भगवन्तों के चरणों में झुकने से सारी दुनिया को झुकाने का भाव ही मिट जाये।

हमारी प्रभुता तो सबको अपनी इच्छा के अनुसार चलाने में नहीं, बल्कि किसी को भी अपनी इच्छानुसार चलाने का विकल्प ही पैदा न हो इसमें है।

परित्यक्त उपेक्षित अंजना पाँच इन्द्रियों के विषयों से उदास होकर भगवंतों की दास बनकर अपने में ही वास करना चाहती है।

सखी वसंतमाला का मन सहानुभूति से भर जाता, लेकिन अद्‌भूत आत्मशक्ति से ओत -प्रोत अंजना सखी को समझाती - जीजी! दुनिया की आँखों में अंजना असहाय जरूर है, मगर आप स्वयं हमें इतनी कमजोर एवं रक्षा की पात्र मत समझो, हम अपना ऋण चुकाने के लिए ही तो यहाँ रूके हैं। अब तो अपना हित प्रभु-चरणों की साक्षी में स्वयं की प्रभुता में संपूर्ण रूप से समर्पित होने में ही दिखता है।

अंजना विचारमग्न है -

अनादिकाल से जीव सुख की चाह में विषयों के पीछे दौड़ता-दौड़ता अनंत दुखों को वेदता रहा है। यदि कभी सच्चे सुख को बताने वाले भी मिले तो अपने स्वरूप में शंका रखकर अटक गया। कितनी ही बार सच्चा सुख दिखाने वालों की अवमानना करके अपना सच्चा स्वरूप पाने में अटका। पुण्योदय से यह मानव भव प्राप्त किया, जिनशासन प्राप्त किया। यदि अभी भी पुरूषार्थ नहीं किया तो किस भव में करेगा ?

## {3}

महाराजा रावण का राजा वरूण के साथ युद्ध प्रसंग बन गया। वे राजा प्रह्लाद को सहायता के लिए पत्र लिखते हैं। कुमार पवन युद्ध में जाने को तैयार होते हैं, माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके, परिजनों को धैर्य बँधाकर, पवनंजय अंजना को तीव्र उपेक्षा भाव से देखते हुये युद्ध के लिए प्रस्थान कर जाते हैं। अंजना विचारमग्न है -

अहो! यह कर्मोदय जनित परिस्थितियाँ पूर्व में हुई जिनशासन की विराधना का फल है। जिस जिनशासन की कृपा से जो जड़-वैभव मिलता है, उसी वैभव के मद में उसी जिनशासन की विराधना होती रहती है। अब तो एक ही भावना है कि कैसे जिनशासन की ओर झुकूँ और कैसे जिनशासन की सेवा में सावधान होऊँ।

सुख तो कषायों के मिटने में ही है। अब न किसी की ओर झुकना है, न झुकाना है, अपने में तृप्त भगवंतों को देखकर स्वरूप में तृप्ति पाकर अपने सहजानंद में रहना है।

सैन्य-दल ने मानसरोवर तट पर पहुँचकर ही अपना पहला पड़ाव डाला।

पवनकुमार मानसरोवर की सुन्दरता का अवलोकन करने निकल पड़े। सरोवर के स्वच्छ जल में कमल खिले हुए हैं। हंस एवं सारस क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। पास ही एक चकवा-चकवी का जोड़ा भी प्रेमालाप में मग्न है। सूर्यास्त हुआ और चकवा-चकवी भी बिछुड़ गये। साथी के वियोग से संतप्त चकवी अकेली आकुल- व्याकुल हो रही है।

वह बार-बार अपनी चुंचुका से कमल दल को कुरेद-कुरेद कर चकवे को ढूँढ रही है। इस समय कमल का स्वाद भी उसे विषतुल्य प्रतीत हो रहा है। जल में पड़ रहे अपने बिम्ब को अपना प्रियतम समझ उसे पाने के लिये जल बिलोरती, परंतु फिर थक जाती, रूक जाती। नन्हीं-सी जान का क्रन्दन भी नन्हा, पर हृदयस्पर्शी और गहरा था।

चकवी के आर्तनाद को पवनंजय ने सुना, उस ओर देखा, जहाँ वह कराह रही थी और फिर व्यथा से व्याकुल हो वे तड़प उठे। सोचा, वे क्या कर सकते हैं उसके लिए ? क्या देकर उसे धीरज बँधा सकते हैं। कमल का स्निग्ध स्पर्श भी उसे असह्य हो रहा है।

परिताप से सन्तप्त पवनंजय के अपराधी हृदय को विरहा अंजना की पीड़ा का स्मरण हो आया और उनकी आँखों से, झर-झर आँसू बहने लगे, मानो पिघलता हुआ गर्मशीशा हो।

अहो! मेरे अहं की जरा-सी फाँस से घोर अनर्थ हो गया और मेरा मन कोमल अंजना के मन के समर्पण को भी न समझ सका।

**कषायों की तीव्रता अपराध कराती है, कषायों की मंदता पश्चात्ताप कराती है। कषाय का प्रारंभ अज्ञान से व अंत पश्ताचाप से होता है।**

कटुक वचन तो उसकी सखी ने कहे थे और पराए दोष से मैंने उसका त्याग कर दिया। धिक्कार हे जो मुझ अज्ञानी ने बिना विचारे ऐसा काम किया। अब यदि मेरा उससे मिलाप न हो तो उसके अभाव में मेरा भी अभाव होगा

स्वयं की ही कमजोरी से हुए अहंकार रूप प्रवृत्ति को धिक्कार है जिसमें धर्म, धर्मायतन और धर्मी जीवों की उपेक्षा होती रही। दुनिया क्या सोचेगी, क्या समझेगी-ऐसी मिथ्या लोक लाज से क्या ? हमें तो अब इसी क्षण अंजना का साक्षात्कार करना चाहिए। फिर मित्र प्रहस्त के साथ पवन कुमार अंजना के प्रासाद की ओर चल पड़े।

रत्नकूट प्रासाद की चाँदनी छत पर यान उतरा। पवनंजय उतरकर देखते हैं, सर्वत्र मनोहारिता देख विस्मित होते हैं।

कुमार, जिनकी देह पर युद्ध की सज्जा नहीं है। द्वार की देहली पर आकर वे ठहर गये, फिर सहज माथा झुकाकर भीतर प्रवेश किया। कक्ष में कुछ दूर जाकर वे फिर ठहर गये, आगे बढ़ने का साहस नहीं हुआ। सामने दृष्टि पड़ी अंजना को देखते ही सिर से पैर तक काँप गये, क्योंकि अपना ही भार को सँभालने का बल उनके पैरों में नहीं रह गया था। मानो घुटने टूट गये, कमर टूट गई, कमर का अंग-अंग पत्तों-सा थरथरा रहा है। अभी-अभी भागकर लौट जाना चाहते हैं, पर पैर न भाग पाते हैं, न खड़े रह पाते हैं और न आगे ही बढ़ पाते हैं।

कुमार पवन नीची दृष्टि किये देख रहे हैं कि नहीं है यहाँ विलास का कक्ष, सामने पाषाण का तखत रखा है और उस पर बिछी है शीतल पाटी, सिरहाने की जगह कोई उपधान नहीं, तब शायद सोने वाली का हाथ ही है उसका सिरहाना। सारा वैभव सिमटकर दीवारों के सहारे परित्यक्त पड़ा है। सारे मणि दीप पड़े हैं निरर्थक और अनावश्यक।

जाने कब अंजना ने आकर उन काँपते पैरों को अपने करपल्लव से स्पर्श किया।

पवनंजय ने चौंककर अपने पैरों की ओर देखकर रूँधे कंठ से बोले- जन्म-जन्म के अपराधी को और अपराधी न बनाओ अंजना उस अपराध से मुक्ति

दो, अंजना! गला रूँध गया। कुछ देर ठहरकर बोले- ऐसा अपराधी यदि हिम्मत करके शरण आ गया है तो क्या उस पर दया न करोगी।

बह जाने दो जन्मों-जन्मों के संचित दूरभिमान की इस कलुषता को, कहते-कहते पवनंजय फूट-फूट कर रो पड़े।

जिस प्रकार अनादिकाल से जीव की पर्याय ने स्वभाव से बिछुड़कर घोर दुख पाया, फिर अंतर्मुखी पुरूषार्थ द्वारा निज घर में आते ही अद्‌भुत सुख-शांति का अनुभव किया, उसी प्रकार अंजना एवं पवन की मनोदशा चल रही है, उसका वर्णन शब्दों में संभव नहीं।

बाईस वर्ष पूर्व मानसरोवर के तट पर सब कुछ ठीक ऐसा ही तो था। ठीक ऐसी ही तुम्हारी आँखें थीं, जिनमें कितनी करूणा, कोमलता, वात्सल्य और विनम्रता बसी हुई थी: लेकिन उस दिन मुझसे महती भूल हो गई, मैं तुम्हें न पहचान पाया। मुझ पर गहन अंतराय का आवरण चढ़ा हुआ था। अपने एक अहं की फाँस के विकल्प के पक्ष ने तुम्हें पहचानने नहीं दिया।

पर आज भी क्या तुम्हें पहचान पा रहा हूँ, पाकर भी बार-बार चूक जाता हूँ। एक बार तो पूछो अंजना कि इस पाषाण हृदय ने मोम-सी कोमल अंजना को आखिर ऐसी सजा क्यों दी ?

अब क्या मैं इस लायक भी नहीं बचा कि अपने हुए दोषों का पश्चात्ताप कर सकूँ - सुनकर अंजना गंभीर हो गई।

पवनंजय - क्या मेरा मात्र एक विकल्प ही निर्दोष, शांत, सौम्य, धर्मी अंजना तक पहुँचने में अंतराय बनता रहा ?

अंजना - हाँ आर्य! भगवंतों की आज्ञा के विरूद्ध उठने वाले मात्र एक ही विकल्प के पक्ष एवं लक्ष्य ही ने तो निर्विकल्प तत्त्व तक पहुँचने से अपने को रोके रखा है।

पवनंजय की आँखों का जल सूख नहीं पा रहा है।

अंजना कहती है- क्या यह कम है कि हम इसी भव में पुनः मिल गए ? इतने कठोर परिणामों के बीच भी श्री वीतरागी देव, निर्ग्रंथ दिगंबर संत एवं उनकी वाणी हमें पुनः मिल जाती है, क्या यह हमारा महासौभाग्य नहीं है।

पवनंजय - लेकिन अंजना ! रागादि की मंदता के काल में भी महान

सौभाग्य से मिले देव-शास्त्र-गुरू एवं साधर्मीजनों का संग भी जानने का अहं, रूचि की विपरीतता, उपयोग की स्थूलता और अपने सर्वस्व समर्पण के बिना निकटता नहीं होने देता।

ऐसा सौभाग्य भी वर्तमान के प्रमाद से, अज्ञान के पक्ष से, विषयासक्ति एवं दुर्भावों से दुर्भाग्य में बदल जाता है।

चौथे प्रहर का मंगल वाद्य राजद्वार पर बज उठा,गहरी नींद में पवनंजय सो रहे हैं।अंजना अपना कर्तव्य समझती है।

इस क्षण कुमार को रोकना नहीं है, लौटाना ही होगा।

पवनंजय की नींद खुल गई।

अंजना - एक निवेदन करना चाहती हूँ....।

पवनंजय - हाँ-हाँ.... कहो!

अंजना - हे आर्य पुरूष! अनीति और अन्याय के पक्ष में, मद और मान के पक्ष में तुम्हारा शस्त्र नहीं उठेगा। जीव मात्र के स्वाभिमान की रक्षा विजय के गौरव और राजसिंहासन से भी बड़ी चीज है।

कुमार पवन ने अंजना के मुख से निकले इन शब्दों को पथ का पाथेय समझकर हृदय में सँजो लिया।

अंजना - दुनिया की आँखों में तुम कब आये और कब चले गये, यह कोई नहीं जानता, तब पीछे कुछ हुआ तो ? तत्काल कुमार ने अँगुली में से एक निशानी रूप मुद्रिका निकालकर अंजना के हाथों में देते हुए कहा - तुरंत ही लौटूँगा।फिर भी अपने विश्वास के लिए चाहो तो यह रख लो।

सहज निरपेक्ष ज्ञातास्वभाव की धारी अंजना गंभीरता से बोली -

स्वामी! निश्चिंत होकर जाओ, मन में कोई शल्य ना रखना।

आँसू भीतर झर गये, होंठों पर मंगल मुस्कुराहट थी।।

{4}

निर्दोष दृष्टि के बल पर निर्दोष तत्त्व की स्वीकृति करके निरपेक्ष ज्ञाता रहने वाली अंजना कुमार पवन की प्रतीक्षा कर रही हैं। दिन बीत रहे हैं। प्रतीक्षा की वेदना दिन-प्रतिदिन गहरी हो रही है। कोई निश्चित समाचार नहीं, मात्र

अनुमानित अनिश्चित खबरें आती हैं। अंजना के शरीर में गर्भवती होने के चिह्न प्रकट होने लगे। अंजना अकेली बैठी चिंता में डूबी उदास हो जाती है। वसंत अपनी सखी का दुख मन ही मन पी लेती है। आँसू अंदर ही अंदर झरते रहते हैं।

अंजना वसंत से बोली - तुम चुप रहती हो जीजी! क्या मैं नहीं समझ रही हूँ, देवदर्शन के लिए भी डर-डर कर जाना पड़ता है ? क्या मैं इतनी हीन समझूँ अपने आपको ?

यदि अंधी लोक दृष्टि में ठीक-ठीक पारस्परिक जानने-समझने की शक्ति होती तो संघर्ष-दुख होते ही नहीं। सर्वत्र दुनिया मंगलमय होती। पवित्रता, समर्पण, विश्वास, आत्मा - इन सबका कोई रूप-रंग तो है नहीं, जो हम प्रकट करके दिखा दें - कहते-कहते अंजना की आँखें भर आईं।

जहाँ लौकिक जीवों का अभिप्राय स्वयं को सबसे अच्छा एवं ऊँचा करके देखने का होता है, वहाँ वे औरों को निर्दोष, पवित्र कैसे मान सकते हैं ?

सास केतुमती सहित अन्य लौकिक जनों को यह जानने की जिज्ञासा नहीं थी कि पवनंजय कब आये और कब चले गये। वे सब तो अंजना को अनादर और उपेक्षा भाव से देखने लगे और अपनी ही कल्पना मात्र से इतना समझने लगे कि निश्चित ही अंजना ने कुछ गलत किया होगा।

बात कानोंकान सारे राजपरिवार में फैल गई। महादेवी केतुमती ने सारा वृत्तांत महाराज से कहा। रानी ने अनेकों विलाप-प्रलापों के बाद महाराज प्रह्लाद से अनुमति ले ली कि अंजना को महल से निकालकर उसके पिता के घर महेन्द्रपुर भेज दिया जाये।

राजा के कानों में भी गूँज रहे थे प्रजाजनों के आरोप प्रत्यारोप आक्षेप इसलिये वो सत्य को जानना ही नहीं चाहते थे।

अगले दिन, अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त हो, जिनेन्द्र भगवान के गुणों के अनुराग में पगी अंजना स्वयं की दुर्बलता से उत्पन्न हुई कलुषता को मिटाने के लिए देव-शास्त्र-गुरू के उपकार से उपकृत चित्त में उनकी सौम्य मुद्रा एवं दिव्यवाणी का विचार, चिंतन-मनन कर रही थी।

**अहो! स्वभाव की महिमा इतनी अपूर्व है कि तीन लोक की प्रतिकूलताएँ एक साथ भी उदय में आ जायें तो भी उसका सामना करने की सामर्थ्य मुझमें है।**

अचानक उसी समय सिंहनी-जैसी दहाड़ती महादेवी केतुमती का आगमन हुआ। कोमल हृदया अंजना एवं वसंत दोनों ही थर-थर काँपने लगीं।

परन्तु महादेवी केतुमती का निष्ठुर हृदय सत्य जानने की इच्छा लेकर ही नहीं आया था।

.अज्ञानियों के विपरीत अभिप्राय में भगवंतों के ज्ञान तक का निषेध वर्तता है तो फिर सामान्य जीवों की बात को आदरपूर्वक कैसे सुनते। वसंत द्वारा प्रस्तुत की गई मुद्रिका को पहचानने से भी दृढ़तापूर्वक मना कर दिया और कहा कि पूर्वजों की पुण्यभूमि को नरक बनानेवाली तुम दोनों मुँह दिखाने लायक नहीं हो। सारथी को आज्ञा दी कि जाओ, मेरा क्रोध सीमा तोड़े, उससे पहले तुम इन्हें नगर की सीमा से बाहर ले जाओ।

महादेवी केतुमती की ऐसी आज्ञा सुन अंजना सुन्दरी का सारा शरीर कंपित हो गया। अत्यन्त आकुलित चित्त हो गयी। दुःख रूप अग्नि से जिनका बदन ही जल गया। परन्तु सासु को कुछ भी उत्तर नहीं दिया अपने ही अशुभ कर्म की बारम्बार निन्दा करती। लेकिन अश्रुओं को क्या करें ? वे तो अविरल रूप से बहे जा रहे थे।

अंजना विचारने लगी - प्रतिकूल प्रसंग को यदि समतापूर्वक वेदन किया जाये तो जीव को निर्वाण की समीपता का साधन है, व्यवहारिक प्रसंग तो नित्य

चित्र-विचित्र होते ही रहते हैं। मात्र कल्पना से उसमें सुख एवं दुख मानना भ्रांति है। अनुकूल कल्पना से वे अनुकूल प्रतीत होते हैं, प्रतिकूल कल्पना से प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। ज्ञाता स्वभाव के अनुकूल रहने वालों को सारे व्यवहारिक प्रसंग न अनुकूल हैं न प्रतिकूल।

रथ अंत: पुर के गुप्त-मार्ग से बाहर निकल गया।

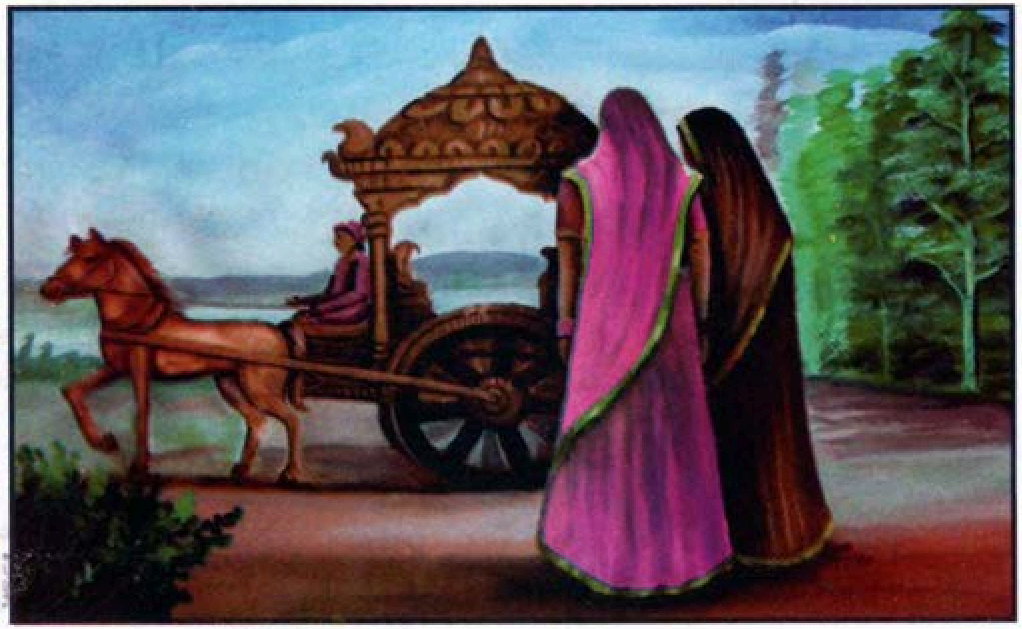

{5}

रथ महेन्द्रपुर के मार्ग पर चला जा रहा है। शीतल पवन के स्पर्श से सचेत होकर मूर्च्छित अंजना ने वसंत की गोद में आँखें खोलीं।

अंजना बोली - मुझ अभागिन के कारण तुम्हें बार-बार अपमान और कष्ट सहने पड़ रहे हैं। आज तो इन सबकी पराकाष्ठा हो गई। सोचती हूं, यदि मेरी राह में काँटे ही काँटे हैं तो तुम्हें उनके बीच क्यों घसीटूँ ? प्रतीत होता है, अभी तक दुर्दिनों का अंत नहीं हुआ है, कर्मों का नाटक देखना अभी और बाकी है। इसलिए मुझे अपनी यात्रा अकेले ही करनी चाहिए।

तुम्हें अपने घर लौट जाना चाहिए। मेरे साथ तुम्हारा प्रेम और शुभेच्छायें तो हैं ही।

वसंत - मुझे क्या पत्थर की मूरत समझ रही हो अंजना ! जानती हूँ कि

तुम्हारे जैसी सहनशीलता मुझमें नहीं है, पर तुम्हारी सहचरी बनने का भरसक प्रयास करूँगी। तुम्हारी कृपाकांक्षी बनने में स्वयं को गौरवान्वित एवं सौभाग्यशाली समझूँगी।

अंजना - मैं अकिंचन आपके उपकारों के बोझ से दबी जा रही हूँ। न जाने कितने जन्म लेने होंगे उससे मुक्त होने के लिए। मुझ अनाथ के पास है ही क्या, जो तुम्हें दे सकूँ, सिवाय दुख और कष्टों के इसलिए सोचती हूं कि ज्ञान में सुख का विश्वास बढ़ाते हुए उसकी महिमा एवं अपनेपन के बल से अपने कर्मों की निर्जरा करूँ।

वसंत सोचने लगी - कैसी निष्पृह है ये, जिसे बाहर की दुनिया के किसी भी आधार की जरूरत ही नहीं है! वास्तव में जिन्होंने अपने आत्मा को आधार बनाया, वह सारे जगत के लिए आधारभूत हो जाते है। इनके लिए मात्र अंतर्जगत का रास्ता ही परम सत्य है। हर परिस्थिति का डटकर मुकाबला करने को यह तैयार है। किसी के प्रति कोई शिकायत, कोई अपेक्षा इनके जीवन में शेष है ही नहीं। मात्र निःस्पृहता एवं निरपेक्षता में ही इनके दर्शन होते है।

वसंत कहने लगी - महादेवी केतुमती की निर्दयता देखकर जगत के प्रति क्या इतनी उदासीन हो जाओगी बहिन? कि अब आप अपने माता-पिता का भी विश्वास न कर सकोगी?

क्या महेन्द्रपुर के स्वामी भी हमें अपने यहाँ से जाने देंगे? वे तो अपनी बेटी को देखते ही स्नेह से भर उठेंगे।

अंजना - यह जीव जहाँ जन्मा है, जो देह धारण की है, वहाँ-वहाँ अभिमान से मेरापना मानकर अनादिकाल से भटका है। अहो! इस जीव को अनंत दुख होने पर भी, नरक-निगोद के अनंत दुख सहने पर भी जागता क्यों नहीं है? अभी भी इस जीव को दुखमय संसार अच्छा लगता है।

दोष सास-ससुर किसी का भी नहीं है। दोष तो बस इतना है कि अपने स्वरूप को चूककर लक्ष्य संयोग पर जाता है और अपने में हुए राग-द्वेष का पक्ष रहता है। वही पक्ष वर्तमान आकुलता एवं भविष्य की दुर्गति का कारण है। अब तो बस एक ही भावना है कि स्वरूप को चूककर अपने पर्यायगत भावों का लक्ष्य ही न हो पाये।

जन्मभूमि के प्रति मेरी दूर से ही शत शत वंदना।

वसंत - विपत्ति के समय ही तो आत्मीय जनों की परीक्षा होती है बहिन ! क्या किसी का विश्वास एवं प्रीति शेष नहीं रही ?

अंजना - कर्मावरण तो सब जगह एक से ही पड़े हैं न जीजी ! लोग विश्वास न भी कर सकें तो कोई आश्चर्य नहीं। इसमें उनका क्या दोष ?

वसंत - तुम्हारी समझ के सामने मैं नतमस्तक हूं, पर मेरी बात तो तुम्हें माननी ही होगी। महाराज के सामने मैं सत्य प्रकट करूँगी। देखना है, वे क्या कहते हैं। इसके बाद ही तुम्हारा निर्णय मुझे स्वीकार्य होगा।

नगर की सीमा के निकट रथ रूका, यहाँ उतरने की बात अंजना की कल्पना में नहीं है।

सारथी का कर्तव्य वह जानती है। दोनों रथ से उतरीं। शरीर थर-थर काँप रहा है, मानो अभी गिर पडेंगी।

सारथी रथ से उतरकर विदा माँगने आया । अश्रुपूर्ण मुद्रा में वह अंजना को निहार रहा है। आँखों से अश्रुधारा बह रही है। दूर, सामने भूमि पर सिर रख कर सारथी ने बारंबार प्रणाम किया और अपने कठोर कर्तव्य की क्षमा-याचना के लिए शब्दों को ढूँढने लगा, पर शब्द नहीं मिले। ग्लानि और विषाद से होंठ खुले रह गये और आँखें पथरा गईं। आँसुओं में उसकी मूक बेबसी झलक रही थी।

अंजना भी बड़ी कठिनाई से स्वयं को सँभाल पा रही थी, पर सारथी की उस सहज मानवीय संवदेना को देखकर वह अपना दुख भूल गई और चरणनत सारथी से दाँया हाथ उठाकर बोली- भैया! दोष तुम्हारा नहीं है। तुमने अपने कर्तव्य का पालन किया है। जाओ, प्रभु तुम्हारे साथ है।

{6}

अंजना की आँखों में आँसू उमड़ते ही चले आ रहे हैं। उन्हें इस रूप में जन्मभूमि में वापस आना पड़ेगा, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी।

बाईस वर्षों बाद लौटी है वह अपनी जन्मभूमि पर, पिता के द्वार पर। शरणार्थी बनकर, कलंकिनी होकर।

क्या वे मुझे आश्रय देंगे ? क्या जन्मभूमि आश्रय देगी ? ऐसे प्रश्नों को :स्पृह होकर दबा दिया।

उन्होंने निःस्पृह होकर दबा दिया।

रथ से उतरकर, नगर सीमा से बाहर, नदी के किनारे वृक्ष तले अंजना बैठी है।

सूर्यास्त हो गया अंधकार फैल गया, अंजना सुन्दरी के शयन हेतु वही वसन्तमाला ने पल्लवों का बिछौना बनाया परन्तु उन्हें निद्रा नहीं आई। दुःख के कारण वह एक रात्रि भी वर्ष के बराबर लगी।

## {7}

प्रभात होते ही अंजना सामायिक करने बैठ गई।

अंजना विचारमग्न है-

वस्तु के परिणमन में राग की अपेक्षा नहीं है। हमारे कलुषित परिणाम हमारी ही आकुलता के कारण हैं। फिर जो भी इस परिस्थिति में निमित्त बने, फिर चाहे वे सास-ससुर हों, पति हों अथवा माता-पिता ही क्यों न हों, पर वे सब मेरे कर्मों के वश होकर ही तो निमित्त बन रहे हैं। अपने ज्ञाता-स्वभाव का पक्ष एवं महिमा नहीं होने से ही, अपने में होने वाले परिणाम का उनके निमित्तत्व पर आरोप आता है और संसार चक्र चलता रहता है।

अपने दुखों का दायित्व औरों पर क्यों डालूँ।

अहा..... अपने स्वरूप का लक्ष्य होने पर, जो ज्ञानधारा की वृद्धि हुई, उस स्वरूप का ध्यान होने पर, उसमें एकाग्रता होने पर, उस स्वरूप का वेग तीव्रता से आया और उपयोग पर-लक्ष्य से हट गया। अपने स्वरूप में स्थिरता हुई, ऐसे आत्मद्रव्य की महिमा कोई अपार है।

हे प्रभो ! मुझे बल दो। मैं अपने में और सब जीवों में प्रभुत्व देख सकूँ।

बाईस वर्षो में सभी कुछ बदल चुका है।

अंजना सुन्दरी पिता के महल की ओर चल पड़ी। वसन्तमाला छाया के समान संग चली। पिता के महलों के द्वार पर पहुंची। दोनों भीतर जाना चाहती थी, लेकिन द्वारपाल ने रोक दिया। दुःख के कारण ओर ही रूप हो गया था इसलिए वह भी कैसे पहचानता। तब वसन्तमाला ने उसे पूरी बात बताई। तब वह अपने स्थान पर अन्य को नियुक्त कर शीघ्रता से महाराज के पास गया। वहां

राजा को नमस्कार कर पुत्री के आगमन का वृतांत कहा।

राजा महेन्द्र पुत्री के आगमन को सुन बहुत हर्षित हुए। अपने निकट बैठे पुत्र प्रसन्नकीर्ति को आज्ञा दी- कि तुम जल्दी जाओ और अंजना को शीघ्र महलों में प्रवेश कराओ। नगर की शोभा कराओ हम भी शीघ्रता से वहाँ आते हैं हमारी सवारी शीघ्र तैयार की जाये।

राजा महेन्द्र जैसे ही गमन करने को हुए तब द्वारपाल ने हाथ जोड़कर पूरा वृतांत कहा। महाराज ने सुना तो उन्हें ऐसा लगा मानों सारा आकाश फट पड़ा हो धरती फट गई हो। दोनों हथेलियों को कानों पर रखकर विहवल होकर बोले- हाय हाय! क्या यही सुनने के लिए मैं अब तक जीवित था ?

उत्तेजित हो मानों रूदन करते हुए बोले-ओह!तूने दोनों कुलों को डुबो दिया। सौ पुत्रों के बीच एक प्राण-पालिता पुत्री अंजना, और उसी ने यह क्या किया ? यदि मेरी पुत्री हो तो उससे कहना अपना कलंकित मुख दुनिया में दिखाती न फिरे, कही जाकर डूब मरे।

महारानी- परन्तु नाथ एक बार पुत्री से मिलना तो चाहिए।

फिर बोले - अंजना से मिलना तो दूर, यदि किसी ने उसका नाम भी लिया तो उसका एक दंड होगा - मृत्युदंड।

ऐसी राजाज्ञा जब अंजना एवं बसंत ने सुनी तो बोल उठी

बसंत- कोई बात नहीं उसे डूबने की क्या जरूरत, समय उसकी निष्कलंकता की साक्षी देगा।

बसंत गाज गिरी सी रह गई किसी सगे पिता का ऐसा स्वरूप उसने आज पहली बार सुना था। विश्वास उठ गया। महाराज का रौद रूप सुनकर किसी निवेदन, स्पष्टीकरण का स्थान ही नहीं बचा अंजना एवं बसंत चुपचाप लौट गईं।

वसंत - कष्ट हो रहा है, अंजना ?

अंजना - अब याद न करो जीजी! वह सब बिसार दो।

**अज्ञानी की भूल हो तो उसे जान लेना, परंतु उसका तिरस्कार नहीं करना। वह भी भगवान आत्मा है, वे बेचारे अज्ञान से दुखी हैं जो दुख में झूल रहे हैं, उनका तिरस्कार करना अपना कार्य नहीं हैं।**

बसंत- वास्तव में संसार में कोई किसी का नहीं है। मात्र भ्रांति से कल्पना है। जगत में सब जीव ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। वह पुत्री या माता कहाँ से हो। जीव व्यर्थ में खोटा राग-द्वेष करके मेरापना मानकर संसार में भटका हैं। यह संसार एकांत दुख में जल रहा है। इसमें सत्य-सुख का मार्ग खोजना ही आत्मा को कल्याणकारी है।

झूठा है संसार, झूठी है उसकी माया-ममता, झूठे हैं माता-पिता-पुत्र-पति-कुटुंब सब स्वार्थ के साथी हैं। संसार में भरमाने वाले और अपने से लगने वाले परिवार जन ही अपने को भुलाने में निमित हैं,

अंजना- कोई भारी प्रतिकूलता आ पड़े कोई बड़े कठोर मर्म च्छेदक वचन कहे तो शीघ्र ही शरीर में स्थित परमानंद स्वरूप परमात्मा का ध्यान करके पर का लक्ष्य छोड़ देना, समता भाव रखना।

बसंत - अब कहाँ जाना होगा।

अंजना - जहाँ निर्ग्रंथ दिगंबर संतों की तपःस्थली हो, किसी को कोई रोक-टोक न हो, किसी के छिद्र देखने का किसी को अवकाश न हो, वहाँ अपना निवास बनायेंगे।

वसंत - क्या हम नारी देह में सुरक्षित रहकर आगे आने वाले कष्टों का सामना कर सकेंगे ?

अंजना - यही तो नारी पर्याय के संस्कारों की दुर्बलता है। रक्षकों के बीच में से ही हम परित्यक्त, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत और कलंकित करके बाहर निकाले गये हैं। क्या अब भी हमें उन्हीं के बीच में शरण ढूँढनी बाकी है ?

शील एवं सम्यक्त्व की रक्षा स्वयं के लिए करनी है। पतिव्रता सिद्ध होने के लिए नहीं। इन प्राणों का लोभ अब हम बहुत पीछे छोड़ आये हैं। बहिन! किसी भी कीमत पर तीव्र रागी, असंयमी, तत्त्वज्ञान की अवमानना करने वाले जीवों का संग अब हमें नहीं चाहिए।

वसंत - पर हम दोनों के अलावा जो तीसरा जीव है, उसकी रक्षा के बारे में कुछ विचार किया बहिन!

अंजना - सर्व द्रव्य स्वतंत्र परिणमते हैं, कोई किसी का स्वामी नहीं। जीवों ने पर का स्वामीपना माना है। वही उसका अज्ञान है, वही उसके दुख का मूल कारण है।

हर जीव अपने कर्मों का नियोग साथ लेकर ही आता है। अपना विधान वह अपने साथ लाया है। वह स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ है। किसी को मारने या बचाने से वह मरेगा या बचेगा नहीं। उस जीव की चैतन्य सत्ता का अनादर मैं कैसे करूँ ?

सूर्योदय से पहले इस नगर की सीमा को छोड़ना होगा।

वसंत ने समझ लिया कि इस धर्म-आराधिका से पार नहीं पाया जा सकता है। इसकी निर्भयता हिलने वाली नहीं है। तीनों लोक यदि हिलते हों तो हिल जायें, किंतु इस जीव को हिलाने वाला तीनों लोक में कोई नहीं हो सकता है।

धन्य है ऐसे धर्मी जीवों का क्षण भर का भी संग, जो स्वयं के अस्तित्व का विश्वास करा दे और सब भयों का नाश करा दे।

देखो, कर्मोदय की विचित्रता! रत्नों के महलों में रहने वाली अंजना रत्नों के ताज से जो कभी सुशोभित थी, आज शरीर पर स्वर्ण का तार भी नहीं है। परन्तु सम्यग्दर्शन से शोभायमान प्रसन्न एवं निर्भय है।

राह अनिश्चित है, गंतव्य असूझ। पर चरण दृढ़ विश्वास के साथ प्रतिपल आगे की ओर अकंपित बढ़ रहे हैं।

अंजना को थामे, कुछ पीछे वसंत चल रही है, पर अंजना के दुखों को थामने की शक्ति उसमें नहीं है। आँसू भीतर ही भीतर झर जाते हैं। कौन है जो अंजना के दुखों की थाह ले सके और खोज सके कि उसके आँसू कहाँ अटके हुए हैं! नगर सीमा के बाहर एक वसतिका में विश्राम किया।

{8}

प्रभात हुआ। सूर्य की ऊष्मा पृथ्वी को चूमने चली आ रही है। धीरे-धीरे धुँधलापन दूर हुआ।

और दिशाएँ उजली हुईं। वसंत अंजना का चेहरा सहानुभूति से देखना चाहती थी, परंतु उसका मुख देखकर वह विस्मित और प्रमुदित हो गई। मौन तपस्वी की भाँति उसके चेहरे से धैर्य और साम्यभाव छलक रहा था। न अपनापन न परायापन। निर्लिप्त, प्रशांत, अपेक्षा और उपेक्षा से परे, नये दिगंत की ओर उन्मुख। मन में नये प्रभात की नई आशाओं की किरणों को लिये दूर गगन की छाँव में पहुँचने के लिए बस - चलते रहो, चलते ही रहो, ताकि जगत की कौतुक भरी दृष्टि और दुखदायी प्रश्नों से दूर जाया जा सके। न दया का पात्र बनना है और न सहानुभूति पानी है, इसलिए इस जगत और जगतवासियों के प्रति अंजना ने अत्यंत निःस्पृह भाव धारण कर लिया।

अंजना विचारों में तल्लीन है-

चाहे, जैसे प्रसंगों में शांति ही श्रेयस्कर है। दूसरा कोई उपाय नहीं है। आकुलता उल्टा दुख का कारण होगी। यह तो अपने ही पूर्व के परिणाम का फल है, ऐसा जानकर शांति रखकर आत्मरूचि बढ़ाना, वह अपने हाथ की बात है। उसको बाहर के संयोग रोक सकें, ऐसा नहीं। सही रूचि का बीज कहा जायेगा, इसलिए जैसे बने, वैसे आत्मरूचि बढ़ाना। चाहे जैसे संयोगों में शांति और धैर्य रखना लाभ का कारण है।

अनुकूल-प्रतिकूल संयोग बनना वह तो संसार की स्थिति ही है, उसको फेरने में आत्मा का सामर्थ्य नहीं। पर इस संसार-समुद्र से आत्मा को तिराना, ऊँचा लाना वह अपनी स्वतंत्रता की बात है।

सगे- स्नेही जीवों का मिलना-बिछुड़ना वह तो जड़-चेतन के संबंध को लेकर हुआ ही करता हैं। परंतु अनादि परिभ्रमण रूप संसार में हजारों सगे-स्नेही

जीवों का वियोग हुआ है, हजारों का राग नियति ने भुलाया है। पीछे जीव जहाँ जन्मता है, वहीं अपनापन मान लेता है, परंतु वे सगे-स्नेही भी छूट जाते हैं। फिर पीछे दूसरे सगे-स्नेही बनाता है। ऐसी घटमाल में यह संसार चक्र चलता ही रहता है।

हृदय में खेद रखना दुख का कारण है। इस दुर्लभ अवसर में आत्महित कैसे हो ? यही विचारने जैसा है। आयु स्थिति क्षणभंगुर है। यदि जीवन में आत्मा के प्रति कुछ किया हो तो अंतिम समय में वही शरणभूत है। सुख पर पदार्थों में नहीं, आत्मा में है। जहाँ सुख नहीं है, वहाँ सुख मानना, वही दुख का कारण है।

अरे! अपना सुख अपने में भासित नहीं होता, इसलिए निमित्तों में सुख बुद्धि बनी रहती है। निमित्तों में सुखबुद्धि होने से नैमित्तिक राग-द्वेष रूपी भावों का पक्ष मिटा नहीं पाते।

सूर्य अपनी युवावस्था का तेज दिखाने लगा। धूप से चेहरा तमतमा उठा है और शरीर श्रम-बिंदुओं से लथपथ हो गया है। ऐसी स्थिति में सुधी अंजना बेसुध-सी चली जा रही है। कहीं रूककर अल्प विराम लेने की भावना उनके मन में नहीं आ रही है, किंतु अब पग लड़खड़ाने लगे, श्वास फूलने लगी और शरीर भी सक्रियता छोड़ने लगा।

पूरी तरह से थकने के बाद एक ग्राम में रात्रिवास के लिए रूकने को वे तैयार होती है।

अगले दिन सूर्योदय से पहले ही दोनों अपने अगले पड़ाव की ओर चल पड़ती हैं। रास्ते में मिले भोले-भाले ग्राम्य-जन एवं बालक-बालिकाएँ सभी अंजना के वात्सल्य के पात्र बनते जाते । इस प्रकार वह पर्ण-कुटियों, ग्रामों और पुरवासियों में से निरंतर आगे बढ़ती रही।

प्रसव का समय निकट आया जान वसंत अंजना से कुछ दिन एक ही गाँव में रूकने का आग्रह करती है, लेकिन अब अंजना सावधान होकर वन की राह पकड़ लेती है।

अंजना समझाती है - जीजी! हमें जगत का कुछ नहीं चाहिए। हम जगत से विमुख होकर मोक्ष के मार्ग पर चल रहे हैं। स्वभाव से सुभट हैं, अंतर में निर्भय हैं, लेकिन जगत के जीवों के अहंकार एवं कर्तृत्व के पोषण में हमें निमित्त नहीं

बनना है, इसलिए अब हमें वन की राह पकड़नी है। एकमात्र संतों की तप:स्थली निर्जन वन ही हमें इष्ट है, वहीं हमारा वास होगा और इसी दृढ़ता तथा विश्वास के साथ वह आगे बढ़ चली।

अंजना निरंतर अविरल दिशाहीन, किंतु लक्ष्यसहित आगे बढ़ती जा रही है। पैरों में कितने ही काँटे चुभ चुके हैं। कँटीली झाड़ियों में से राह बनाने के कारण शरीर अनेक जगहों से छिल चुका है, इकलौती साड़ी तार-तार हो चुकी है, जिसमें अनेकों स्थानों पर गाँठें लग चुकी हैं, थकावट और भोजन का प्रश्न गौण बनकर एक ओर हट गया है। परसन्मुखता वाले लोगों से अंजना बहुत दूर निकल चुकी है, निर्ग्रंथ दिगम्बर संतों की खोज में।

{9}

भावना यदि अटल और सच्ची हो तो वह फलती ही है और निर्ग्रंथ दिगंबर संतों से मिलने को अति आतुर हृदय, आखिर एक गुफा के निकट संत मुनिश्वर के चरणों को पा ही गई। एक पवित्र शिला पर चारण ऋद्धिधारी मुनिराज स्वामी अमितगति विराजमान थे।

जिसे अंतर में एकमात्र अपने निज चिन्मात्र धर्मी की शरण है, उन्हें बाहर से अत्यंत दुखदायी भीषण परिस्थितियों में भी धर्म एवं धर्मात्मा ही एक मात्र अचिंत्य शरण रूप भासित होते हैं। भयंकर विपत्ति हो या अपार संपत्ति के बीच धर्मीजनों का मस्तक तीन लोक में सिर्फ सच्चे देव-शास्त्र-गुरू के चरणों में ही झुकता है।

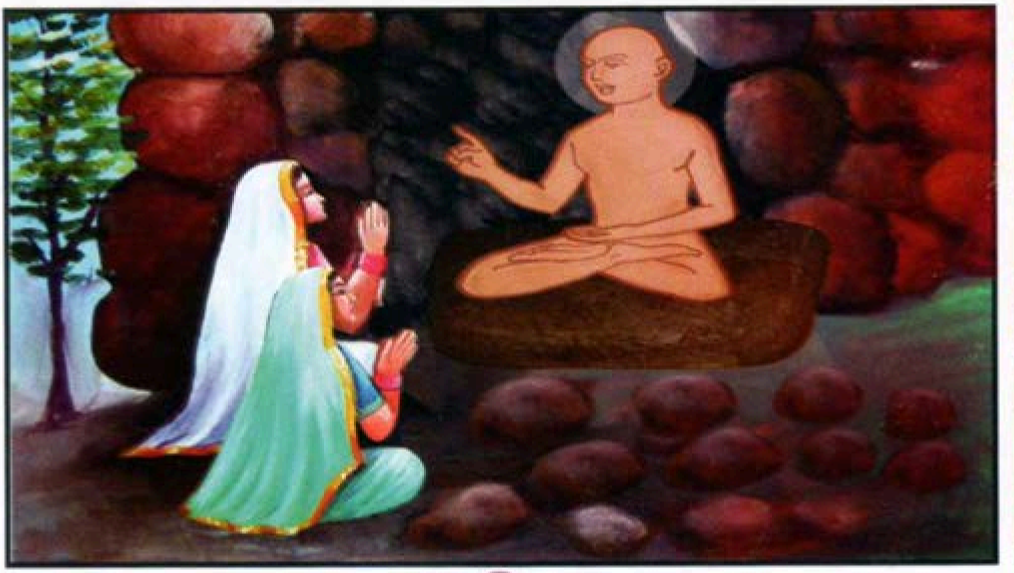

ये दोनो मुनि के पास गयी सर्व दुख भूल गयीं, तीन प्रदक्षिणा देकर हाथ जोड़ नमस्कार किया मुनिराज मिले मानो परम बाँधव ही मिले।

अंजना स्तुति करने लगी कि ''अहो! प्रभो आपने जंगल में रहकर आत्मस्वभाव का अमृत निर्झर प्रवाहित किया है। प्रभु आप तो धर्म के स्तंभ हो। साधक दशा में स्वभाव की शांति का वेदन करते हुए परिषहों को जीत कर परम सत्य को जीवंत रखा है। प्रभु आप वीतरागता की मूर्ति हो, देह में वीतराग दशा छा गई है। प्रभो! आप तो जिन-सरीखे ही हो।''

दोनों ने चरणों की शरण में शांति, आनंद और निर्भयता का अनुभव किया। सारे दुख कहाँ चले गये, पता ही नहीं चला।

तब वसंत हाथ जोड़कर अत्यंत विनीत हो भक्तिभाव से गद्‌गद हो निवेदन करने लगी

''हे प्रभो! कल्याण सागर, अनाथों के नाथ, हमें दुखों के समुद्र से निकालो।''

प्रभो! हमें इस मनुष्य लोक की बस्ती में कहीं भी आश्रय नहीं मिला, मृत्यु के मुँह में भी स्थान नहीं मिला। झूठा कलंक लगाकर मेरी बहिन ससुर गृह एवं पितृगृह से क्यों निकाल दी गई है ?

मुनिश्वर- हे पुत्री पूर्व भव में पटरानी पद के घमंड में आकर अपनी सौत के ऊपर क्रोध करके जिनेंद्र प्रभु जी की प्रतिमा वेदी ऊपर से बाहर रखवा दी थी उसी समय समय श्री नामक आर्यिका अहार के लिए आयी थी श्री जी की अविनय देखकर अहार न किया और वापिस लौट गई और तुम्हे पात्र समझकर करूणाबुद्धि से उपदेश दिया कि देवशास्त्र गुरू का अविनय करने से घोर नरक में जायेगी जो, अत्यंत दुखों का कारण हैं।

इस प्रकार अर्जिका श्री के उपदेश से रानी कनकोदरी नरक के दुखो से भयभीत हुई सम्यगदर्शन सहित श्रावक के व्रत अंगीकार किये और श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा को अत्यंत बहुमान पूर्वक श्री जिनमंदिर में वापिस विराजमान करवाया इस प्रकार वह पटरानी कनकोदरी स्वर्ग में गयी और स्वर्ग से चयकर राजा महेन्द्र की पुत्री तू अंजना हुई हे बालिके पूर्व भव में तुमने जिनप्रतिमा का अविनय किया यही कारण है कि तुम्हारी पवित्रता को भी कलंक

का सामना करना पड़ा पूर्व पाप के फल स्वरूप ही ऐसे घोर दुख को प्राप्त हुई हो। अब तो तुम अपना चित्त संसार सागर के तारणहार श्री जिनेंद्र देव की भक्ति में ही लगाओ कारण कि जिनेंद्र देव की भक्ति के फलस्वरूप सर्व दुखों का सहज ही अभाव हो जाता है।

बसंत- प्रभो बताने की कृपा करें कि ऐसा कौन पापी जीव है, जो इसके गर्भ में आया है।

मुनिश्वर-पुत्री! शोक न करो। महेन्द्रपुर की राजकुमारी अंजना लोक में शील शिरोमणि है। भोगों से उदास अंजना को जगत का कोई भी वैभव झुकाने में समर्थ नहीं है, इसलिए वह इस लोक के समक्ष दीनता और पामरता का जीवन जीने के लिए असमर्थ थी। तीनों लोकों के समस्त वैभव को सड़े हुए तिनके के समान समझने वाली सतियों की सिरमौर अंजना को संचित पाप के उदय ने चारों ओर से घेर तो लिया है, लेकिन वर्तमान में पाप का परिणाम न होने से आकुलित एवं भयभीत नहीं है और इसके गर्भ का जीव पापी नहीं, वह तो अद्भूत पुण्य का धनी, इस लोक का श्लाका पुरूष कामदेव का लुभावना रूप लेकर इस पृथ्वी पर जन्मेगा। वह देवों से भी अजेय होगा, विश्व की सारी विभूतियों का स्वामी होने पर भी वह एक दिन उन्हें ठुकराकर निर्जन वन के पथ पर चल पड़ेगा। इस जन्म के बाद वह कोई और जन्म धारण नहीं करेगा- इसी देह को त्याग कर अविनाशी पद प्राप्त करेगा।

वसंत - ऐसे प्रबल पुण्य का स्वामी गर्भकाल में अपनी माँ को ऐसे भयंकर कष्ट देकर स्वयं भी ऐसी यातनाएँ क्यों झेल रहा है, प्रभो ?

मुनिश्वर- कर्मों की लीला विचित्र है पुत्री! अपने पूर्व कर्मों की श्रृंखलाओं में वह जीव भी तो बँधा है, पर इस बार गर्भ में उन कर्मों को नष्ट करने का बल लेकर आया है। इसलिए उपसर्गों से खेलता हुआ वह गर्भ से ही इन कर्मों से निरपेक्ष अपनी अविनश्वर सत्ता को प्रसिद्ध करता हुआ जगत को मूक उपदेश देता हुआ आया है कि किसी को किसी के आश्रय की जरूरत नहीं है।

ऐसे वात्सल्य और करूणा की मूर्ति निर्ग्रंथ योगीश्वर आशीर्वाद देते हुए गमन करने लगे।

अंजना बाहर से पूर्णतया अचेत उन महामुनि भगवंतो की भक्ति में सचेत

हो एकाकार हो गई थी। योगी जब चलने को हुए तो अंजना को आघात-सा लगा। वह उन मुनि भगवंतों के चरणों में फिर झुक गई और रूदन भरे कंठ से विनती करने लगी।

हे प्रभो! तीन लोक के कृपासागर! करूणा निधान! मुझ जैसी कोई दया पात्रा को आपके चरणों की छाया भी न मिलेगी ?

फिर मुनिराज बोले - प्रभुता को धारण करने वाली अंजना आज दीन स्वर में कैसे बोल रही है ? लोक में किसे किसका आधार है ? आधार और सुरक्षा को बाहर मत खोजो, वे भीतर ही हैं। पंचेन्द्रिय के विषयों में सुखबुद्धि होने से अज्ञानी जीवो की लगातार पंचेन्द्रियों के विषयों की मिठास बनी रहती है, जिसके फल में असाता का रस निरंतर बढ़ता रहता है और इसी के फल में जीव वर्तमान में दुख उठाते हुए भविष्य के असहनीय पंच परावर्तन के दुखों में प्रवेश कर जाते हैं, वहीं भली होनहार वाले जीव धर्मी जीवों की निकटता में उनके ज्ञान वैराग्य को आदर्श बनाकर अपने सुखज्ञान एवं प्रभुता का विश्वास बढ़ाते हुए अनंत काल तक अबाध सौख्यरस का पान करते हैं।

मुनिराज बोले बेटी, समता को धारना ।
मुक्ति को पाना हमको , ममता को मार के ।।
हिम्मत न खोना बेटी, तुम तो बलवान हो।
चेतन भगवान हो तुम, आनंद की खान हो।
उदयों का नाटक देखो, समता सँभार के ।। मुक्ति।।
मुक्तगामी जीव तेरे, कूख में है पल रहा।
इसी भव से सिद्ध होगा, आनंद उछल रहा।।
चरम शरीरी नाम, होगा हनुमान रे ।।मुक्ति।।
सिद्धों से बातें करते, मिले मुनि संत रे।
चलते-फिरते सिद्धों से, मुनि भगवंत रे।
अंजना तू सिद्धों जैसी, समता सँभाल रे। मुक्ति।।

इतना कहकर निर्ग्रंथ दिगंबर संत क्षण भर में ही आकाशमार्ग से गमन कर गये। दोनों ने मुनि की चरण-रज अपने मस्तक पर लगाई और उसी गुफा को अपना निवास बना लिया।

दोनों थकी-हारी बहिनें अपनी तृण-शय्या पर लेट गईं। कभी किसी वनचर का तीखा स्वर गूँज उठता तो कभी कोई चीत्कार। कभी उपसर्गों की अशुभ आशंकाएँ उन्हें सिहरा देतीं। जाने कब दोनों निद्रादेवी की गोद में अचेत हो गईं।

ब्रह्म बेला में पंछियों के कलरव-गान से अंजना की निद्रा टूटी, स्वच्छ तन-मन से अंजना आत्मचिंतन में लीन हो गई।

स्वयं के ध्रुव की स्थिरता ने उन्हें अविलंब अपने आवरण में समेट लिया। अंजना का बाह्य अस्तित्व तिरोहित होकर ध्रुव की ध्रुवता से एकाकार हो गया। अहो ! हमारी वस्तु तो अंतर में अभेद ध्रुव.... ध्रुव.... ध्रुव... सामान्य एकरूप चली आ रही है। चाहे जितनी पर्याय आयें परन्तु वस्तु तो सामान्य एक रूप ही चली आती हैं। ऐसे एक रूप की दृष्टि करने पर, उसमें रहे हुये गुणों के भेद का गुण विशेषता का लक्ष्य छूटने और अभेद पर दृष्टि पड़ने पर हमें जो आनंद का आस्वादन हो रहा है, उसकी जगत को खबर नहीं।

विद्या के प्रभाव से बसंतमाला ने खाने पीने की सभी सामग्री की यथोचित व्यवस्था कर फिर वह अंजना के रास्ते में लगे घावों को धीरे-धीरे साफ करने लगी। अंजना ने कहा ''जीजी! कौन-सी कठोरता से तन-मन छिलना शेष रह गया है, जो तुम्हारे हाथों से छिल जायेगा।''

गुफा में ही एक ओर बड़ी भव्य, मनोमुग्धकारी मुनिसुव्रतनाथ भगवान की विशाल पद्मासन प्रतिमा विराजमान है। मुख की कोमलता और साम्यभाव से वीतरागता बरस रही है। प्रतीत होता था कि मानो मूर्ति के होंठ कुछ बोलने ही वाले हैं। ऐसी जीवंत और मनोमुग्धकारी छवि से आँखें हट नहीं पाती धन्य है वह शिल्पी, जिसने कठोर वज्र से पाषाण को आत्मा की पूर्ण पावनता प्रदान करके उसे कोमलता एवं सर्वमंगल की भावना से युक्त करके कल्याणदाता अभयदाता बना दिया। लोक-कल्याण के सारे स्वर उसमें से निःश्रुत होकर सारे वातावरण को प्रशांत बना रहे थे।

प्रभु के चरणों में निवेदन के साथ-साथ उस शिल्पी को भी बार-बार वंदन।

शिष्यत्व हो तो गुरू मिलते हैं, भक्ति हो तो भगवान मिलते हैं, संयम की भावना हो तो संयम के निमित्त मिलते हैं।

इस प्रकार से अंजना स्वयं को महा सौभाग्यशाली मानती हुई जिनचरणों में अत्यंत विनय आदर सहित समर्पित हो गई। भक्ति में लवलीन अंजना अब प्रतिकूलताओं के बीच अपने रचित-स्तवनों का पाठ करती, कहती - अहो ! धन्य है इनकी सर्वज्ञता की महिमा आना, इनकी निकटता में अंतर्दृष्टि से स्वभाव की साधना होना, महिमापूर्वक वीतरागी मार्ग में आगें बढ़ना, राग की तीव्रता को घटाना।

एक दिन, दिन-भर के सभी कार्यों से निवृत्त होकर अंजना सामायिक भक्ति करती हुईसमता भाव से तत्त्व विचारों में मग्न थी। रात्रि का प्रथम प्रहर हो चला था। अचानक चारों ओर एक भयंकर गर्जना गूँज उठी। दोनों बहिनें एक-दूसरे को सांत्वना देने के लिए कातर दृष्टि से देखने लगीं। इतने में दहाड़ता हुआ एक सिंह गुफा के द्वार पर आ पहुँचा।

उसकी गर्जना से सारा वन काँप उठा। दोनों को सन्मुख देख वह और जोरों से गरज उठा, मानो दोनों को फाड़ कर खा जायेगा। दोनों बहिनों का चेहरा एक बार तो सफेद पड़ गया।

वसंत अंजना का हाथ पकड़, दीवार का सहारा ले गुफा में और अंदर की ओर चली गई, मन ही मन उद्विग्न हो गई। अंजना भी समझी कि मृत्यु का क्षण आ चुका है। बोली - '' बहिन ! मृत्यु सामने खड़ी है। इसको भी हमसे कुछ लेना शेष रह गया होगा। अच्छा है, हम ऋण उतारकर जायें। काया का मोह व्यर्थ है। उन संतों के दिव्य वचन याद करो। उन्होंने कहा था कि रक्षा अंदर ही है, इन पाषाणों में नहीं। जीजी! देर हो जायेगी, कायोत्सर्ग करो। मृत्यु के सन्मुख इस देह को खुला छोड़ दो इसे देह चाहिए, ले जाने दो। संक्लेश परिणामों से मन को मुक्त कर निर्मल परिणामों से स्वरक्षित आत्मा की रक्षा करो।''

इतना कहकर अंजना ध्यान में लीन हो गई।

तभी दूसरी ओर से दीर्घाकार अष्टापद छलांग लगाता हुआ भयंकर गर्जना करते आ पहुँचा। सिंह भी एक बार सन्नाटे में आ गया। मेरे सामने मुझसे टकराने वाला यह कौन ? देखते ही देखते अष्टापद और सिंह का भयंकर युद्ध हुआ और उसने सिंह को आहत करके भगा दिया तथा स्वयं भी लुप्त हो गया।

अरे, देवता भी धर्मी जीवों की रक्षा करके स्वयं को धन्य मानते हैं। भगवंतों की भक्ति और आत्मा की शक्ति का विश्वास आना ही चाहिए।

भगवंतों की भक्ति से सुख का मार्ग समझ में आता है और पग-पग पर आपत्ति-विपत्ति में रक्षा करने वाले भी मिल जाते हैं और आत्मा की शक्ति समझ में आने से निर्भयता और निशंकता आती है।

भयंकर उपसर्ग टला जान वसंत और अंजना मधुर स्वर में प्रभु भक्ति एवं तत्त्वचर्चा में लीन हो गईं। वास्तव में कभी भी, किसी भी भयंकर परिस्थिति में सच्चे देव-शास्त्र-गुरू का अवर्णवाद न हो, मिथ्या देव-शास्त्र-गुरू की अनुमोदना न हो, सच्चे तत्त्वज्ञान की विराधना न हो, मिथ्याज्ञान की अनुमोदना न हो, प्रमाद, अविवेक एवं अहंकार युक्त चर्या का स्वप्न में भी समर्थन न हो।

दोनों बहिनें समझ गईं कि निश्चय ही कोई देव जो प्रभु की सेवा में रहता है, उसने ही अष्टापद का रूप धरकर हमारी रक्षा की है और अब हमें भयमुक्त करने के लिए प्रभुभक्ति का सुंदर विधान रच रहा है।

वास्तव में मणिचूल नामक एक गंधर्व देव प्रभु की सेवा में तत्पर रहता था। जब उन दोनों बहिनों ने मुनिचरणों में आँसू बहाये थे, तभी से उस देव का

द्रवित हृदय हर क्षण उनकी सेवा के लिए सावधान हो गया था, किंतु उस शाम थोड़ी-सी चूक हो जाने से वह घटना घट गई। अत्यंत दुखी होकर पूर्ण सावधानी के साथ वह देव पुनः उनकी सेवा के लिए फिर से तत्पर हो गया।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरू के साथ रहने वालों के देवता भी उनके साथ रहकर उनकी दासानुदासता की भावना भाते हैं और देव-शास्त्र-गुरू का समागम छोड़ने वाले जीव जीवन में अकेले रह जाते हैं। उनके दुख बाँटने वाला भी कोई नहीं बचता।

इस प्रकार से दोनों बहिनें अत्यंत निःशंकता एवं प्रसन्नता पूर्वक धर्मचर्चा में तल्लीन हो गईं।

{11}

तभी एक दिन अंजना ने प्रसव की पीड़ा का अनुभव किया। अनिवार्य कष्ट व्यथित कर रहा था। पैरों को, हाथों का सहारा देती, पीड़ा से विह्वल जमीन पर बैठ गई और छटपटाने लगी। मुख से एक ही शब्द निकला - जी....जी..........!

वसंत तुरंत समझकर सचेत हो गई। अंजना की सेवा-शुश्रूषा में लग गई। सहसा समस्त गुफा रत्नों के प्रकाश से जगमगाने लगी, सारा वन-प्रदेश प्रफुल्लित हो गया, चारों ओर उत्साह-उमंग का वातारण छा गया।

अंजना कहने लगी - वाह रे पुत्र! वाह! नहीं भाया तुझे जन्म लेना आदित्यपुर के राजमहलों में, नहीं भाया तुझे जन्म लेना महेन्द्रपुर के राजप्रासादों में, ऐश्वर्य और वैभव तुझे नहीं सुहाये, तेरे जन्मोत्सव में राजप्रांगण में संगीत की ध्वनियाँ नहीं बज रही हैं। तुझे रागी जीवों की गोद, उनका पालना और उनकी देखभाल नहीं सुहाई, संतों की तपस्थली जैसी पवित्र भूमि के निर्जन वन-प्रदेश में जन्म लेना तुझे सुहाया। वास्तव में यह तेरा अंतिम जन्म है। यथार्थ में तू चरमशरीरी है, तेरे खेल निराले हैं रे! आगे कौन-सा खेल खेलने वाला है बेटा! उस खेल को तू ही जानता है।

इन खेलों में सदा तू तमाशगीर ही रहना, स्वयं को तमाशा नहीं बनने देना।

बादलों-सी हल्की अनुभव करती हुई वसंत गुनगुनाने लगी। स्वर स्वयं

निकल रहे हैं, आवेग और आनंद के। आँखों में तैर रहे हैं विगत जन्मोत्सवों के अपूर्व उल्लास और आनंद के राजमहल के चित्र, सजावट, मंगलगान, पुरोहितों के आशीर्वचन- सभी कुछ तो उभर रहा है। उसकी कल्पना की आँखों के सामने।

एक ने मुँह फेरकर अपने आँसुओं को छिपा लिया तो दूसरी ने निश्चिंतता और निश्चय पूर्ण साँस ली।

वसंत ने अंजना को फलों का रस पिलाया और स्वयं भी फलाहार लिया। अंजना की बाल प्रकृति आज खो गई है, चंचलता स्थिर हो गई है। हल्की होकर भी वह मातृत्व की एक अपूर्व गंभीरता की गुरूता का भार अनुभव कर रही है।

भविष्य की अदृश्य दूरियों में उसका मन डूबता चला गया, वह पूछ रही है कुमार पवन से - कहाँ हो तुम ! दुख की किन विभीषकाओं में उलझ गये हो ? क्या कभी रागी जीवों के ममत्व की मृग मरीचिका को तोड़कर लौट पाओगे, इस राह पर ?

वसंत को अब तक केवल प्रसव की चिंता थी। मगर अब चिंता है, क्या है इस बालक का भविष्य ? कहाँ हैं कुमार पवनंजय ? क्या है अंजना की नियति ? किस राह ले जायेगा यह अतुल तेज का धनी बालक ? श्री मुनिराज जी ने कहा था, उपसर्गों से खेलते चलना इसका स्वभाव होगा। कब पार करेगा यह उन उपसर्गों को ? जाने कब यह बिछुड़े माता-पिता को मिलाएगा ? इस भविष्य को न वह मुनिराजजी से ही पूछ पाई और न इस बारे में मुनिराजजी ने कुछ कहा, जाने क्यों ?

## {12}

तभी अचानक!

तेजी से घूमता हुआ आकाश में एक विमान दिखा और ठीक गुफा के ऊपर वह अटक गया।

एक बार फिर से दोनों बहिनों के हृदय थर्रा गये, क्योंकि विमान तो तभी अटकते हैं, जब या तो कोई पूर्व भव का मित्र अथवा शत्रु हो। यहाँ मित्र अथवा आत्मीय जन का समागम तो कल्पना से भी परे हैं। क्यों कोई आत्मीय इस गहन वन में आयेगा ? फिर से किसी बड़े संकट का ध्यान करके वे आत्मस्थ होने लगीं,

तभी विमान गुफा के द्वार पर आकर रूका।

उसमें बैठे विद्याधर राजा प्रतिसूर्य के मन में भी यही विचार आया कि अचानक विमान अटका क्यों ? शत्रु या मित्र ?

जिस प्रकार सच्चा श्रोता देव-शास्त्र-गुरू के प्रति सर्व समर्पण एवं अपनेपन की भावना से आगे बढ़ता है, उसी प्रकार राजा प्रतिसूर्य भी आगे बढ़े। दोनों मानवीयों को एक नन्हें-से बच्चे के साथ देखकर क्षणभर को तो स्तब्ध रह गये, ये दोनों बालिकायें इस सघन वन में कैसे आईं ? ये मानवी हैं या अप्सरा ? मानवी कैसे आ सकती हैं ? अंजना के चेहरे की गंभीरता, अनेक उपसर्गों के बीच निखरी सहनशीलता, संतों जैसी समता-भाव लिये हुए थी। अनेक गुणों से ओत-प्रोत अंजना को देखकर चरणों में सिर को झुकाने का मन हो गया।

बहुत साहस करके, बड़े विनयपूर्वक वात्सल्य से पूछ बैठे- ''बेटी! मैं तुम्हारी कुशलता एवं परिचय जानना चाहता हूँ। मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि मेरा विमान क्यों अटका ? मेरे हृदय में जन्म-जन्म से भरा अद्भुत वात्सल्य भाव क्यों उमड़ रहा है ? मेरी उत्कंठा शांत करें। दोनों बहिनों ने भी अंतरंग सामीप्य का अनुभव किया।

वसंत ने कहना आरंभ किया - महेन्द्रपुर की राजकुमारी और आदित्यपुर की राज्यलक्ष्मी अयाचक दृष्टि लिये कितने धैर्य और सहनशीलता से वन-वन विचरती हुई आज आपके सामने उपस्थित हैं। ज्यों-ज्यों वे सुनते जाते, त्यों-त्यों उनके आँसुओं की धारा बढ़ती जाती। अंत में राजा प्रतिसूर्य अर्धमूर्च्छित-हो गये। अरे! फूल-सी कोमल पुत्री ने इतने संकट कैसे सहन किये ? कुछ स्वस्थ होने पर राजा प्रतिसूर्य ने अपना परिचय दिया और कहा कि ''बेटी! मैं तुम्हारा मामा हूँ। बचपन में एक ही बार देखा था, इसलिए पहचान न सका।''

अंजना ने तो चारों ओर से बिलकुल निर्मम और निरपेक्ष होकर वन की राह पकड़ी थी। मानवीय संवेदना से अंजना का कोमल हृदय द्रवित हो उठा। उसने भी मुँह फेरकर आँसू टपका लिये।

अंजना ने वसंत के सर्वस्व त्याग एवं कुशल परिचर्या की कथा सुनाकर फिर सभी के नेत्र गीले कर दिये।

युगल राजा-रानी ने मस्तक झुकाकर निःस्पृही संगिनी के समर्पण को

बार-बार वंदन किया। मन-ही-मन राजा समझ गये कि इस अंजना के मन को जीतना बहुत ही कठिन है। सारा मानव लोक इस बालिका के प्रति अपराधी है। यदि कुछ संशय आया था तो गुप्तचरों को भेजकर सही जानकारी मँगाने के बाद ही उचित निर्णय लेना था, आदित्यपुर और महेन्द्रपुर के महाराजाओं को। बेटी अंजना! जानता हूँ सारा लोक तेरा अपराधी है। मैं भी उसी लोक से बँधा एक मानव हूँ। आज तुझसे उसी तुच्छ संकीर्ण विचारों के जगत में लौटने के लिए कहने का साहस अब मुझमें नहीं है। तेरे साथ जो अन्याय इस जगत में हुआ है, उसका प्रायश्चित नहीं हो सकता। फिर भी यदि तेरा दयालु हृदय अपने इस दुखी, निःसंतान मामा पर दया कर सके तो हनुरूह द्वीप तुझे पाकर अपना सौभाग्य समझेगा। बोलते-बोलते उनका कंठ भर आया।

मैं जानता हूँ, मेरी निःस्पृही बेटी को ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो लुभा सके। वैसे ही मेरा जीवन तो सूना और व्यर्थ है। यदि तू नहीं भी चलेगी तो मुझमें अब कुछ भी देखने-सुनने की शक्ति नहीं बची है। अब मेरा जीवित रहना असंभव है। तुझे विवश नहीं कर रहा हूँ। मैं स्वयं विवश हो गया हूँ। इतना कह वे फिर से अंजना के चरणों में नत हो गये। अंजना मन पर नियंत्रण रखती हुई गंभीरता से बोली-

''अपराध किसी का किसी के प्रति नहीं है। अपने ही पूर्व जन्म में किये कर्मों का फल है। अपने अर्जित पाप को लोक के माथे पर थोपकर फिर नया पाप करने की शक्ति अब मुझमें नहीं है। एक ही भावना निरंतर रहती है कि ज्ञाता स्वभाव के आश्रय से सपने में भी अपने दुख के लिए, दूसरों को दोष देने का भाव मेरे मन में न आये, अपने दोषों को सहज भाव से स्वीकार करने में साहसी बनूँ और दोषों को निकालने में पुरूषार्थी बनूँ। आत्मा को अपने गुण-दोष देखने का अभ्यास ही नहीं है, पर के दोष देखने का अनादिकालीन मिथ्या संस्कार है।''

प्रिय मामाजी दुख है तो सिर्फ इस बात का कि लोक के जो उपकार मुझ पर हैं, उनसे मुँह फेरकर अपने बचाव के लिए इस निर्जन में मुँह छिपाती फिर रही हूँ। भय है तो सिर्फ इस बात का कि कहीं मुझसे देव-शास्त्र-गुरू की, स्वयं की, जीवमात्र की विराधना न हो जाये। आपके स्नेह को न पहचान सकूं, इतनी

हृदयहीन भी नहीं हूँ, पर सोचती हूं कि इस जगत में रहने के लिए बहुत अयोग्य हो चुकी हूं। आपके साथ जाकर आपको भी संकट में न डाल दूँ, क्योंकि संकटों में चलने के लिए ही अंजना ने इस जगत में जन्म लिया है। अब आगे जो अच्छा लगे, वह आप जानो !

कहते-कहते अयाचीक और निःस्पृही वृत्ति की धनी अंजना की आँखें फिर से छलछला आईं। अंजना की आँखों में आँसू देख मानो सारा वन रो पड़ा हो! राजा प्रतिसूर्य अंजना वसंत और शिशु को लेकर विमान में बैठ गये। विमान उड़ चला।

बालक गोद में नहीं सँभल पा रहा था। विमान की गति तेज होने पर बालक उछल पड़ा और विमान से बाहर नीचे जा गिरा। धरा की ओर गिरते बालक को देख अंजना के मुख से चीख निकल गई। अहा रे! क्या तुझे रखने की सामर्थ्य भी मुझमें नहीं ? और मूर्च्छित हो गई।

गिरते बालक पर दृष्टि गड़ाये हुए राजा प्रतिसूर्य ने विमान को नीचे उतारा। नीचे आकर देखा कि वज्र चट्टान पर पड़ा बालक मुस्कराता हुआ क्रीड़ा कर रहा है और जिस पर वह गिरा था, वह चट्टान चूर-चूर हो गई।

निर्भय बालक अपना अँगूठा चूसते हुए मुस्करा रहा था। बालक को

उठाकर अंजना को देते हुए राजा बोले - बेटी ! निश्चय ही यह पुत्र वज्रवृषभनाराच संहनन का धारी है।

इसके बल-वीर्य से चट्टान तक खंड-खंड हो गई। निश्चित ही यह जीव चरमशरीरी तद्भव मोक्षगामी है।

तब वसंत ने प्रसंगवश मुनिराज की भविष्यवाणी कह सुनाई। सुनकर सभी की आँखें हर्ष से गीली हो गईं। राजा प्रतिसूर्य सहित सभी ने बालक की तीन प्रदक्षिणा देकंर नमस्कार करके, श्रद्धा प्रकट की।

हनुरूह द्वीप में जन्मोत्सव के होने के कारण बालक का नाम हनुमान रखा गया। अंजना के पुत्र का जन्मोत्सव स्वर्ग लोक में हुए इन्द्र-जन्म की भाँति मनाया गया। नगर जय-जयकार से गुंजायमान हो गया।

तद्भव मोक्षगामी चरम शरीरी हनुमान की..... जय!

## {13}

अंतरंग प्रीतिसहित धर्मी अंजना से मिलने के अत्यधिक हर्ष में विजयी पवन आज आदित्यपुर लौट रहे हैं।

लौकिक जीवों की निकटता में मिलती हैं तृष्णायें! धर्मी जीवों की निकटता में मिलती है तृप्ति । जो अंजना के निकट कुमार पवन पूर्व में अनुभव कर चुके थे।

जब राजा प्रहलाद ने विजयी कुमार के आगमन का शुभ समाचार सुना तो उनके हर्ष का पार न रहा। नागरिकों की प्रसन्नता भी आकाश छू रही है। सारी नगरी कुमार के स्वागत के लिए पलकें बिछाये मांगलिक सजाए प्रतीक्षारत है मंगल गान से नगरी गूंज रही है।

कुमार के नयन अंजना के महल रत्नकूट प्रासाद पर टिके हैं। प्रासाद के द्वारों पर ताले लगे दिखे अंजना कहीं दिख नहीं रही। मन शंका से काँप उठा कि कहीं कुछ अशुभ न घट गया हो। खेद और पश्चात्ताप की धारा अंदर की अंदर बहने लगी, सारी नगरी उन्हें श्मशानवत् दिखने लगी। आखिर किस अहं के बल पर मुझे अंजना की याद नहीं आई। कुमार स्वयं को धिक्कारने लगे।

फिर वे आये माता-पिता के महल की तरफ। आज माँ अत्यधिक प्रसन्न थी। आज ऐकान्तिक रूप से पा जायेंगी अपने बेटे को। सबसे पहले वे उसे जय

की टीका लगायेंगी, आरती उतारेंगी।

लेकिन समाचार माँ तक पहुँच चुका है कि कुमार सीधे अंजना के महल रत्नकूट प्रासाद में गये हैं। माँ को विश्वास नहीं हो रहा है, लेकिन कुमार का पहला वाक्य - "माँ! देवी कहाँ है, उसके महल का द्वार बंद क्यों है ? वह यहां भी नहीं है, क्या नहीं लगायेगी वह मुझे जय-तिलक ? शायद तुमने सोचा होगा कि अपशकुन हो जायेगा। मगर माँ, तुम नहीं जानतीं उस रात्रि की वार्ता ?

माँ - ओहो तो क्या अंजना निर्दोष है!"

सब अवाक् हैं, किसी के पास कहने को कुछ शब्द ही नहीं हैं। कुमार शंका की कल्पना से मूर्च्छित हो गये। इधर मित्र प्रहस्त ने एक साँस में उस रात्रि की वार्ता माँ को सुना दी।

चेतना आने पर कुमार बोले - ओह माँ! शायद तुम उस पुजारिन को नहीं पहचान पाई। हम अपने पूज्य को ही नहीं पहचान पाये तो फिर पुजारिन को कैसे पहचानेंगे ? पर माँ, दोष तुम्हारा नहीं है।

तुमसे पहले उसकी उपेक्षा मैंने की है। सजा का पात्र भी तुमसे पहले मैं ही हूँ। बोलो न माँ, कहाँ है वह ? कहाँ भेज दिया है उसे तुमने ? उसके बिना अब मेरा जीना असंभव है।

सुन चुकी हूं बेटा! सब सुनकर भी मैं अब तक जीवित हूँ। तुम मुझे जो चाहे दण्ड दो, मैं अपराधिनी हतभागिनी हूँ मैंने निर्दोष स्त्री रत्न को पाकर घर से निकाल दिया।

रोओ मत माँ! अपने पापों का प्रायश्चित मैं ही करूँगा। बताओ न माँ, कहाँ है वह ?

माँ - बेटा! महेन्द्रपुर, अपने पिता के घर।

मन में विचार चल रहा है। सुख-दुख की एकमात्र संगिनी देवी का अपराधी एक बार फिर से किये चरम अपराध की सीमा को छूकर वापस लौटा है। प्राणों के लौटाने की आशा लिये द्वार पर खड़ा है। इस बार क्षमा कर देंगी तो अपराध की पुनरावृत्ति नहीं होगी। उसे जड़मूल से ध्वस्त करने का संकल्प लेकर ही लौटा है। अपने अपराधों का बोध होने पर, अपराधों का मूल से छेदन करने का संकल्प लेकर भव्यजीव सच्चे देव-शास्त्र-गुरू के श्री चरणों की शरण में

आते हैं। वे जानते हैं कि अति दयालु श्री गुरू न तो रोष करेंगे और न उपेक्षा। वे तो मात्र क्षमा और शांति की मूर्ति हैं, उसी प्रकार वह निराश नहीं करेगी। रोष करना तो उसे आता ही नहीं, वह तो सिर्फ क्षमा और शांति की मूर्ति है।

इस प्रकार कुमार पवन विचार करते हुये महेन्द्रपुर पहुँच गये, पवनंजय का पदार्पण सुन, राजा महेन्द्र स्वागत के लिए आये।

नगरवासी लोगों ने भी बड़े आदर के साथ प्रवेश कराया, परंतु वहाँ भी जब कुमार पवनंजय ने अपनी अंजना को नहीं देखा तो स्वयं निर्जीव की भाँति निश्चल रह गये

फिर किसी प्रकार से वहाँ से निकल कर पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे।

हे अंजना ! तुम कहाँ हो हे निर्दोष कब मिलोगी ? कहा गईं हो कोई पता तक नहीं बता गई किसके आश्रय से जीवित रहूँ हाँ अंजना

पवन विचारमग्न हैं - अक्षम्य है मेरा अपराध ! मैं उसे पाने की बात तो दूर, उसकी छाया भी छूने के योग्य नहीं हूँ। इसी से वह चली गई दूर, बहुत दूर। फिर सहसा मित्र प्रहस्त से बोले - जाओ! अब तुम्हें कष्ट नहीं दूँगा। जिस लोक में सती को स्थान नहीं मिला, उस लोक में जीकर मैं क्या करूँगा।

प्रहस्त दौड़कर पवन के गले से लिपट गये और बिलख-बिलख कर रो पड़े।

पवन बोले - भैया प्रहस्त! मैंने तुम्हें भाई, मित्र और गुरू के रूप में देखा है। दे सको तो पथ का पाथेय दो, मोह मत दो।

आशीर्वाद दो कि लक्ष्मी को पाकर ही मैं तुम्हारे पास लौटूँ। किसी प्रबल से प्रबल बाधा के सामने भी मैं विचलित न होऊँ और न हार मानूँ। पृथ्वी के अंतिम छोर तक मैं अपनी अंजना को खोजूँगा। यदि कुलाचल भी मेरे मार्ग में बाधा बनकर आयेंगे तो मैं उनका भी उच्छेदन करूँगा।

नक्षत्रों को भले ही अपनी चालें पलटनी पड़ें, किंतु पवनंजय का मार्ग नहीं रूँधेगा। एक नहीं, सौ जन्मों में सही, पर अंजना को पाकर ही विराम लूँगा।

अश्रुपूरित आँखों से प्रहस्त देखते रह गये। पथ अनंत है, पृथ्वी विशाल है, खोज दिशा शून्य और इच्छित हृदय में बसा शुभ सूर्योदय क्या विरह बादलों को चीरता हुआ मंगल प्रभात आयेगा ?

जिस प्रकार भव्यजीव मोहियों की दुनिया छोड़, धर्मी जीवों की खोज में निकल पड़ते हैं, फिर चाहे मार्ग में कोई भी आकर्षण या विस्मय का कोई भी प्रसंग बने, वे विचलित नहीं होते, न मार्ग बदलते हैं और न खोज खंडित होती है। उसी प्रकार कुमार पवनंजय बहुत तेजी से निर्मम-निर्लेप बढ़ते ही जा रहे हैं।

गहन अश्रद्धा और विरक्ति से अंतस्तल भर चुका है। इस पृथ्वी का उन्हें विश्वास नहीं रहा, आस-पड़ोस के जगत से मानो सत्य की सत्ता समाप्त हो गई है। चारों ओर वे एक मात्र अंजना का अस्तित्व ही देखना चाह रहे हैं। शेष खोजें नि:शेष हो गई हैं।

रास्ते के गाँव, ग्राम्य से बाहर के पनघट, घाट और सरोवरों के तीर पर बैठ वह जादूगर बन चमत्कार दिखाता। देश-परदेश की विविध वार्तायें सुनाता और दुर्लभ वस्तुयें दिखाता। भान भूलकर पुर-वधुएँ, ग्राम-बालायें उसे घेर लेतीं, मोहित और चकित हो देखती रहतीं। उसकी आँखें दूर पर कहीं जमीं, आँसुओं से भर जातीं।

दिनोंदिन कुमार का उन्माद संज्ञाहीन होता जा रहा है। हृदय की गोपनीय व्यथा अब छिपाये न छिप रही है। सारे जगत के द्वार-द्वार पर घूम-घूमकर वह देव जैसे व्यक्तित्व का धनी युवा, अंजना की दुख वार्ता सुनाने लगा। पूछता कि क्या वह कभी उनके घर आई थी ? क्या उन्होंने कंधे पर शिशु लिये हुए एक देवी को देखा है ? पूछते-पूछते वह विचित्र पंथी रो देता।

आदित्यपुर की कलंकित निर्वासित राजवधू की करूण-कथा घर-घर में लोग अश्रुपूरित नयनों से सुनते, निजी भेद तत्काल ही खुल जाता। सारे जगत के मुख पर निर्दोष अंजना की खोज में भटकते पवनंजय की कथा तैरने लगी।

समय का भान भूल दिशाहीन भ्रमण करते पवनंजय को महीनों बीत गये। उन्हे विश्वास हो गया था कि मनुष्य जगत में अंजना का कहीं भी अस्तित्व नहीं है।

दिन बीतते जा रहे हैं। सुबह होती, फिर शाम हो जाती, न कोई नया अंकुर, न हवा में नई सिहरन। अब पवनंजय एक वन में, एक स्थान पर अंजना के ध्यान में स्थिर होकर बैठ गये। निश्चय कर लिया है कि यदि प्राण प्रिया प्राप्त नहीं हुई तो यहीं प्राणों का त्याग कर देंगे।

सहसा कर्णों में एक परिचित-सा स्वर सुनाई पड़ा - पवनंजय!

उन्होंने अपना हाथ पकड़ने वाले निकट खड़े व्यक्ति को देखा। अपरिचित व्यक्ति अनजाना चेहरा, मगर अत्यंत सौम्य-वरदान-सा देता । उसे ताकते रहे, पर पहचान न सके।

प्रतिसूर्य हँसकर, अश्रुभरी आँखों और गीले कंठ से बोले- चौंको नहीं बेटा! मैं अंजना का मामा राजा प्रतिसूर्य हूँ, हनुरूह द्वीप का राजा। अंजना और तुम्हारा आयुष्मान पुत्र मेरे घर पर सकुशल हैं। जबसे तुम्हारे गृह त्याग का वृत्तांत सुना है, अंजना ने अन्न-जल का त्याग कर दिया है। अविलंब चलो बेटा, अन्यथा वह दुखियारी तुम्हारा मुँह देखे बिना ही प्राण त्याग देगी। पवनंजय ने सुना तो उन्हें विश्वास नहीं हुआ।

वृद्ध प्रतिसूर्य की आँखों से अश्रुधारा अनवरत बह रही है। अचानक पवनंजय बोल पड़े- अंजना! क्या अंजना मिल गई ? अंजना क्या यथार्थ में मुझ पापी के लिए प्राण त्याग रही है ?

रोओ मत, बेटा! दुखों की रात्रि बीत चुकी है। अब क्षण भर का विलंब भी उचित नहीं होगा। चलने को जैसे ही उद्यत हुए कि उनकी दृष्टि लज्जित और नतमस्तक पिता और ससुर पर पड़ी। कुमार को अनुभूति हुई कि ये तो ग्लानि युक्त अनुभव कर ही रहे हैं। अब इनके चित्त को दुखी करने से क्या लाभ ?

फिर बोले- पिताजी! मैंने आपको बहुत पीड़ा पहुँचाई है। मैं ही तो सभी के कष्टों का कारण बना हूँ। मैं आपका पुत्र हूँ, पर अब बहुत दीन निर्बल तथा अकिंचन हो गया हूँ। क्या आप मुझे मेरे पुराने स्वरूप में नहीं लौटायेंगे। सभी के मन भर आये, आँखें भर आईं, किसी की तो हिचकियाँ भी चलने लगीं।

सभी ने विमान में बैठकर हनुरूह द्वीप की ओर त्वरित गति से प्रयाण किया।

## {14}

महाकष्ट से कुमार पवन विषय-कषाय के पोषक मोहीजनों की बातों में न उलझकर, पुण्योदय की अनुकूलता में न फँसकर, नाना प्रकार के आकर्षणों में न अटककर, शील शिरोमणि धर्मानुरागी अंजना को ऐसे पा गये, मानो जन्म-जन्म के दरिद्री ने चिंतामणि रत्न पा लिया हो!

हृदय में उल्लास के साथ आँखों में हर्ष के आँसू आ रहे हैं।

कुमार, अंजना एवं हनुमान से बहुत हर्ष उल्लास से मिले आपस में एक दूसरे ने अपनी-अपनी शारीरिक एवं मानसिक वेदना भी अवगत कराई।

महासती अंजना स्वयं के निर्दोष स्वभाव की प्रतीति सहित सबको निर्दोष देखते हुए कर्मोदय जनित कौतुक से अत्यंत भिन्न, ज्ञाता रहने वाली, अत्यंत निःस्पृह, गंभीर मुद्रा धारक न कोई आक्षेप न घृणा, न अपेक्षा, न उपेक्षा।

अंजना की आँख से हर्षाश्रु छल-छल बह गये।
कौन किससे क्या कहे, सब कुछ नयन ही कह गये।।
धन्य धर्मी अंजना, पाषाण है या सुमन है।
धन्य तेरा धैर्य सचमुच, धन्य समता धन्य है।।
धन्य वासंती सखी सी, सेविका होगी कहां?
धन्य मुनिवर आपसी, करूणा मिले जिसको महा।
पहाड़-सी प्रतिकूलताओं, ने परीक्षा खूब ली।
नहीं दृष्टि डगमगाई, सत् समीक्षा सीख ली।।
दीनता व याचना की, वृत्ति तुझसे काँपती।
मौत भी तुझसे डरी, अध्यात्म विद्या साथ थी।।

पवनंजय - हे कोमलांगी अंजना! तुमने जिस धैर्य और समता के बल से संकटों पर विजय पाई है, तुम्हारे उस पुरूषार्थ के सामने हमारा पुरूषार्थ, वीरता और विजय यात्रा तुम्हारे चरणों में नत हो चुकी है। मुक्ति यात्रा में बाधक तत्वों से बचने के लिए आज हम महापुण्योदय से वर्तमान की अपूर्व विशुद्धि से तुम्हारा संग पा गये हैं। निश्चित ही अब हमारी कर्मों पर विजययात्रा आरंभ होगी। अपनी दुर्बलता से अपने ही अंदर होने वाले सुख के पक्ष से चलने वाले कषाय एवं पापों के एक भी विकल्प के पक्ष में धर्म, धर्मायतन, धर्मी जीवों की उपेक्षा करके नये कर्मों का बंधन नहीं करेंगे, बल्कि जगत के सुखों की उपेक्षा करके धर्मी जीवों की छत्र-छाया एवं स्वधर्मी की सन्मुखता में कषायों एवं कर्मों पर विजय प्राप्त करेंगे। यह हमारी अंतिम जययात्रा होगी। इसके बाद कभी भी हम मूर्ख मोही जनों की बस्ती में नहीं भटकेंगे।

अंजना - हे स्वामी! अब तो यही एक भावना चल रही है कि न तो किसी का स्वामी बनना है और न किसी को स्वामी बनाना है। हृदय में परद्रव्यों के प्रति

प्रीतिरूपी हवा होने पर ही ठोकर मिलती है। अभी तक हमने हर प्रवृत्ति कषाय एवं विषयासक्ति के पक्ष में की है, जिसके फल में असीम दुख मिला है।

पवनंजय - अब तो सुख, आनंद, प्रभुता के लिए अपने ज्ञाता एवं अकर्ता स्वभाव का पक्ष एवं महिमा को एक समय के लिए भी विस्मृत नहीं करेंगे, उसी में ही अर्पित रहेंगे।

अंजना - पर्याय में देखना है, अपनी वर्तमान योग्यता और द्रव्य में देखना है, अपना त्रैकालिक सामर्थ्य। पर में तो हमें देखना है ही नहीं। कर्माधीन होकर राग करता है, उस परतंत्रता को भोगने की योग्यता भी उस पर्याय की स्वतंत्रता है और उसी समय उस राग से भिन्न द्रव्य स्वभाव की शुद्धता की सामर्थ्य सदा ज्यों की त्यों है - ऐसा दिखता है।

पवनंजय - अरे! जिनशासन तो अलौकिक है। जो पर्याय होने वाली हो, उसको करना क्या ?और जो न होने वाली हो, उसको भी करना क्या ?

ऐसा निश्चय करते ही कर्तृत्व बुद्धि टूटकर स्वभाव सन्मुखता हो जाती है। सर्वज्ञ त्रिकाल को जानने-देखने वाले हैं, ऐसा मैं भी तीन काल, तीन लोक को जानने-देखने वाला ही हूँ। ऐसे त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का निश्चय करना यही सम्यग्दर्शन है। यही निर्भार रहने की कला है।

अंजना - अरे! वास्तव में जीव ज्ञाता ही है, यही तो अकर्तापने की उत्कृष्टता है। क्रमबद्ध ख्याल में आने पर जो कर्तापने की बुद्धि से थक गया है, वह पर के कर्तापने के अभिमान से थककर आत्मा की ओर आता है।

वास्तव में थके हुए को ही सम्यग्दर्शन होता है। उसको ऐसा नहीं लगता कि मुझे कुछ चाहिए, मैं कुछ करूँ, उससे मुझे कुछ मिले, ऐसी भी अपेक्षा नहीं होती।

पवनंजय - गुण-पर्याय की स्वतंत्रता एवं द्रव्य की महानता लक्ष्य में लेना है, यही मुख्य बात है। प्रत्येक पर्याय की स्वकाल लब्धि देखने से निमित्ताधीन दृष्टि छूट जाती है और द्रव्यस्वभाव की महानता देखने से पर्यायदृष्टि, पर्याय का लक्ष्य छूट जाता है और वस्तु की दृष्टि हो जाती है।

अंजना - यह जीव विश्व को स्वरूप दृष्टि से न देखने पर कोई कारण न होने पर भी अपनी विपरीत दृष्टि होने के कारण पर में इष्ट-अनिष्ट की झूठी कल्पनायें करता हुआ कषायों की भट्टी में जलता रहता है, जिसका अंत मात्र

पश्चाताप में ही होता है। यथार्थता का बोध होने पर अपूर्व आनंद के साथ पूर्व में हुए पाप कृत्यों अथवा कषायों में उलझे रहने का भी भारी पश्चाताप हुए बिना नहीं रहता ।अरे, अरे! लौकिक राग तो मात्र पाप रूप ही है। लौकिक संगति में तो पापों का ही पोषण होता है। तत्त्व का प्रेम, धर्मात्मा, साधर्मी, देव-शास्त्र-गुरू-धर्म आदि के प्रति निश्चल वात्सल्य एवं समर्पण ही पुण्य के कारण बनते हैं।

कुछ दिन वहीं रहकर पवनंजय आदित्यपुर अपने राज्य में आये। पिता के दीक्षा लेने के बाद पवनंजय ने राज्य संभाला। फिर एक दिन संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर दीक्षा लेकर निर्वाण पद प्राप्त किया।

धीरे-धीरे हनुमान युवा हो गये। वे विनयवान हैं, महाबलवान हैं, समस्त शास्त्रों का अर्थ करने में कुशल हैं, परोपकार करने में उदार है, गुरूजनों की पूजा करने में तत्पर हैं, स्वर्ग से भोगने के बाद बाकी बचे पुण्य को भोगने वाले हैं।

उनकी बुद्धि सूक्ष्म थी, वे अत्यंत सुंदर कांति के धारक कामदेव थे, शीलवान एवं सम्यक्त्व के धनी थे। उन्होंने मुनि दीक्षा धारण की एवं माँगीतुंगी से मोक्ष प्राप्त किया।

अंजना ने आर्यिका दीक्षा लेकर समाधिमरण पूर्वक देह त्याग किया, जिसके फलस्वरूप वे स्वर्ग गईं एवं भविष्य में निर्वाण पद प्राप्त करेंगी।

गौतम स्वामी राजा श्रेणिक से कहते हैं कि राजन्! जो हनुमान के साथ नाना रसों से आश्चर्य उत्पन्न करने वाले इस अंजना और पवनंजय के चारित्र को भाव से सुनता है, उससे एक क्षण भी जिनधर्म की विराधना नहीं होती। कर्म करते हुए सावधान रहता है। कैसी भी पहाड़ जैसी प्रतिकूलता आने पर जिनधर्म की ही शरण लेता है, आत्मश्रद्धा को खोता नहीं है, कैसे भी दुख में किसी का सहारा नहीं खोजता, मन को संतुलित रखता है, स्वयं का ज्ञायक स्वयं के पास ही समझता है, उसे अपने अकर्ता स्वभाव का भान हो जाता है और अशुभ कार्यों में उसकी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती, पाप के परिणामों में से सुखबुद्धि निकल जाती है। अपना स्वभाव राग के बिना ही ज्ञान, आनंद एवं सुखमयी भासित हो जाता है।

अपने को ज्ञान मात्र भाव रूप स्वीकारने पर अनुभवने पर आनंद का सागर उछलता है। साथ ही ऐसा बल प्रगट होता है कि सारे कर्म इकठ्ठे होकर आ जायें तो भी भयभीत करने में समर्थ नहीं।

# महासती चन्दनबाला

बेड़ियों से जकड़ी हुई सती चंदनबाला ने भूखी-प्यासी तलघर में पड़े होने पर भी, आर्तध्यान नहीं किया, अपितु सम्यक् तत्व विचार से, वहाँ भी आनंद का ही वेदन किया। शारीरिक दशा भले ही दुर्बल हो गई हो, परन्तु वहाँ भी धर्माराधना में सहज सावधान रही, फलत: स्वयं ही वहाँ से मुक्त हुई।

अहो! अपना पुरूषार्थ, अपने में ही चलता है, बाह्य में किंचित् भी नहीं। अत: परिस्थिति बदलने कीआकुलता नहीं, अपितु मन: स्थिति बदलने के लिये, सम्यक् तत्वाभ्यास रखना योग्य है।

मैं तो अपने ज्ञान से ज्ञान को जानता हूँ। अहो! मेरे जानने में ज्ञायक ही आ रहा है ।मैं तो ज्ञायक ही हूँ, स्वयं में पूर्ण तृप्त प्रभु हूँ।

# महासती अंजना

अंजना जी को पति का आधार छूटने पर अस्थिरता के कारण किंचित बाह्य में रूदन दिखाई दिया था, तो भी अंदर में अपना आधार निज चैतन्य स्वभाव ही है, ऐसा समझपूर्वक रूदन आदि भय के भाव की कर्ता नहीं बनीं, अपितु निर्भय और ज्ञाता ही रहीं।

अंजना जी को अपने ज्ञानानंद स्वभाव की अटूट श्रद्धा ज्ञान से सारे प्रसंग ज्ञान के ज्ञेय तो दिखते ही थे, साथ ही उस समय संबंधी ज्ञान की पर्याय भी ज्ञेय ही दिखती थी। ज्ञान स्वभाव में ऐसी अचल बन के खड़ी थी कि उन्हें कोई दोषी नहीं दिखता था, कोई प्रतिकूल दिखाई नहीं देता था। उन्हें जगत दुखी देखता था लेकिन उनको दुख का परिणाम भी ज्ञान में परज्ञेय तरीके भासित होता था। वो अपने क्रमश: होते हुए परिणाम की भी अकर्ता थी उनको जगत का कोई भी पदार्थ परिणाम वाला, परिणाम का कर्ता दिखता ही नहीं था।

“जिन मंदिर संसार रूपी रेगिस्तान में कल्पवृक्ष के समान है।”

-पं. सदा सुखदास जी (रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी)

श्री सीमन्धर स्वामी दिगम्बर जिन मंदिर, विलेपार्ले (पश्चिम) मुंबई